# २- (घ) रासलीला मंच एवं सम्प्रदाय

रासलीलानुकरण हमारी सैंकड़ों वर्ष पुरानी परम्परा है। जिसके विभिन्न विस्तृत महत्वपूर्ण विवरण अनेक स्थलों पर मिलते हैं। ब्रज संस्कृति से उपजी रासलीला आज सिर्फ ब्रज ही  नहीं अपितु समग्र भारतीय संस्कृति का प्रतिनिधित्व करने वाली है। रासलीलाओं के आयोजन हेतु बने रासलीला मंचों का प्रारम्भिक स्वरूप रासमण्डलों में देखने को मिलता है। रासमण्डल से लेकर रासलीला मंच तक के उत्तरोत्तर विकास को समझने के लिए निम्नांकित महत्वपूर्ण तथ्य महत्वपूर्ण सहायक सिद्ध होंगे-

माधो जी सिंधिया रास के बड़े प्रेमी थे। उनके यहाँ ब्रिटिश रेजीडेंट के प्रधान अंगरक्षक टामस डरूएअर ब्रोटन ने सन् १८०९ में जन्माष्टमी पर रास का प्रदर्शन देखा था, जिसका वर्णन उनके बनाए एक सुन्दर रास के चित्र के साथ मिलता है। [१]

रासोत्सव का विवरण देते हुए वे मंच विधान का विवरण देते हुए लिखते हैं-

''जिस शामियाने में हमें बैठाया गया, वह १५० फुट लम्बा था, सामने २ फुट ऊँचा मंच था, जिसकी शिवकाएं और स्तम्भ भली प्रकार चित्र वेष्टित थे, इसे सिंहासन कहते हैं। इसके मध्य में फूलडोल था जिसमें पुष्पहीरक रत्न और बहुमूल्य मणियाँ सज्जित थीं।''

जेम्स टाड ने इन्दौर यहां रास का प्रदर्शन देखा था जिनका वर्णन उन्होंने अपने ग्रंथ 'द एनल्स ऐंड ऐंटिक्विटीज ऑफ राजस्थान' में, जो सन् १८२९ में प्रकाशित हुआ था, किया है। वे लिखते हैं-

'उन पात्रों के जो कृष्ण तथा उनके सखा और सखियों का अभिनय करते है भावगीत अत्यंत प्रभावपूर्ण होते हैं, उनके कथोपकथन अत्यंत हृदयस्पर्शी है। मथुरा वृंदावन के चौबे (ब्राह्मणों से अभिप्राय है) संगीत विद्या में पारंगत है। इन गायक अभिनेताओं की करुणार्द्र स्वलहरियों में जब भक्त हृदयों का आनंदरस सम्मिलित हो जाता है, तो मुरली के स्वर में यह राग अत्यंत आह्लादकारी प्रतीत होते हैं।''

अपने स्वयं देखे रास प्रदर्शन का विवरण देते हुए टाड आगे लिखते है-

---

१. लैटर्स रिटन इन मरहठा कैम्प ड्यूरिंग द इयर (१८०९)

''रासधारियों का संगीत और नृत्य दोनों साधारण कलाकारों से उत्कृष्ट थे। उनके हाव-भाव आकर्षक थे और उनका स्वर स्वाभाविकता का अतिक्रमण नहीं करता था। उनका परिधान रुचिपूर्ण और समुचित था। विशेष रूप से कन्हैया जिनके सिर पर सूर्यकांत मणि थी, गले में रत्नों की माला थी, अत्यंत भव्य लग रहे थे। समस्त वस्त्र जो कन्हैया और अन्य पात्र पहने थे, महाराजा के भंडार से प्रदत्त थे। नृत्य के उपरांत कृष्ण की प्रमुखतम लीलाओं का प्रदर्शन हुआ और यह प्रदर्शन इतना सफल और संयत हुआ कि इतने छोटे बालकों में वैसी कला आश्चर्य की वस्तु जान पड़ी। रासधारियों के साथ जितने वादक ओर बालक थे- सभी ब्राह्मण थे ओर यह अत्यंत आनंद का विषय था कि रास समाप्त होने के उपरांत से प्रत्येक राजा के सम्मुख विनत होने के स्थान पर एक-एक करके महाराज के सामने आया और अपने छोटे-छोटे हाथ उठाकर राजा को आशीर्वाद देने लगा। महाराज आशीर्वाद ग्रहण करने के लिए उनके सम्मुख विनत हुए।''

प्रसिद्ध अंग्रेज विद्वान ग्राउस ने मथुरा के जिलाधिकारी भी रहे थे अपने ग्रंथ 'मथुरा ए डिस्ट्रिक्ट मेमोयर' में (जो सन् १८७४ में छपा था) रास का वर्णन किया है। वे लिखते हैं कि–

'रास एक लिखित धार्मिक रूपक है, जिसमें कृष्ण के जीवन की प्रमुख घटना अभिनीत होती है। यह मध्यकालीन योरुप के 'मिरेकिल प्लेज' के समान है। प्रत्येक रास एक घंटा या उससे अधिक समय में समाप्त होता है। प्रत्येक दृश्य अपने मौलिक रूप में, मौलिक स्थल पर प्रदर्शित होता है। जिस दृश्य को बड़े सौभाग्य से मैं देख सका वह विवाह का दृश्य था जो संकेत (बरसाने के निकट का एक स्थल) में प्रदर्शित हुआ था। रंगमंच के स्थान पर एक वाटिका थी, पृष्ठभूमि में एक लाल पत्थर का मंदिर था, ऊपर पूर्णिमा का चंद्रमा था, सामने से अनेक दीप-रश्मियों का प्रकाश पात्रों के मुख पर बिखर कर एक अपूर्व दीप्ति फैला रहा था। दृश्य अत्यंत मनोहारी था और प्रेम की लीला से भी किसी प्रकार के अविचार का आभास नहीं था।'

उक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि ग्राउस ने ब्रज की वनयात्रा के अवसर पर संकेत वन में राधा-कृष्ण के विवाह की लीला देखी थी जो आज भी यात्रा के समय इसी स्थल पर होती है।

इस प्रकार रास हमारा एक ऐसा पारिवारिक मंच है जिसे देश के बाहर भी पहचाना जाता रहा है और विदेशी दर्शक तक इसकी पावनता

तथा कला से प्रभावित होते रहे हैं। रास के नृत्यों ने विदेशियों को यहां तक प्रभावित किया और वे स्वयं कन्हैया को नचाने में रुचि लेते रहे हैं। [१]

रास के रंगमंच को आजकल आकर्षक ढंग से सुसज्जित किया जाता है; क्योंकि यह केवल भावनात्मक या प्रतीकात्मक ही नहीं बल्कि व्यावसायिक भी होता है, जहाँ सैकड़ों-हजारों दर्शकों के बैठने की व्यवस्था होती है। किसी नाट्य-मंच की तरह यह मंच एक ही ओर से खुला रहता है। पहले रास-मंडलों में सिंहासन स्थायी रूप से पक्के बने होते थे, परंतु आजकल दृश्य-तकनीक में उन्नति के कारण स्टेज या मंच खाली रहता है, जिस पर इच्छानुसार सिंहासन तथा दृश्यावली को शीघ्रता से स्थित और परिवर्तित कर दिया जाता है। यह तीस-चालीस फुट तक लम्बा और पन्द्रह-बीस फुट तक चौड़ा होता है। विद्युत-उपकरणों द्वारा विविध प्रकार के प्रकाशों की व्यवस्था रहती है और ध्वनि-विस्तारक यन्त्रों के द्वारा दूर तक का दर्शक शब्द और स्वर का आनन्द ले सकता है। मंच के पिछले भाग में वन-उपवन, महल, कंस-कारागार तथा यमुना जी और पर्वत इत्यादि के आकर्षक परदे और उपकरणों की प्रतिकृतियां तैयार रहती हैं, जिन्हें आवश्यकतानुसार तेजी से परिवर्तित किया जा सकता है।

आजकल स्थायी मंच निर्मित होते जा रहे हैं, लेकिन जब रास-मंडली को कहीं बाहर जाकर रास करना होता है तो वहाँ प्राय: बाँस-बल्लियों, तख्तों इत्यादि के द्वारा ही मंच का नवनिर्माण किया जाता है। अन्य उपकरण रास-मंडली स्वयं अपने साथ ले जाती है। आकर्षक रूपसज्जा, परिधान और आकर्षक संगीत व नृत्य, रास का प्राण होते हैं, जो भावुक व्यक्तियों पर अमिट प्रभाव छोड़ते हैं। पूरी रासलीला अपने में एक ऐसी फिल्म होती है, जिसके प्रत्येक अंग को प्रभावशाली बनाने के लिए उसके संचालक को तत्सम्बन्धी प्रत्येक बात का गहराई से ध्यान रखना पड़ता है।

प्राचीन काल में केवल ब्राह्मण बालकों को ही रास के स्वरूपों में स्थान दिया जाता था, परन्तु अब प्रत्येक जाति-वर्ग को उसमें स्वीकार कर लिया जाता था। आजकल पुरुष पात्रों के साथ नारी पात्रों को भी उसमें भाग लेने के लिए प्रेरित किया जा रहा है।

रासलीला के मुख्य संस्थापकों तथा संरक्षकों में वल्लभाचार्य, स्वामी हरिदास, घमंडदेव, हितहरिवंश, नारायण भट्ट तथा हरिराम व्यास के नाम प्रमुखता से लिए जाते हैं। इन्होंने रास में श्रृंगार रस अथवा माधुर्य रस के साथ हास्य रस को भी स्थान दिया। हितहरिवंश जी ने वृन्दावन के

१. हिन्दी ऊतुका- 'मथुरा ए डिस्ट्रिक्ट मेमोयर' - एफ.एस.ग्राउस।

घाट पर एक चैन-रासमंडल बनवाया। स्वामी हरिदास जीने रास के सांगीतिक पक्ष को सुदृढ़ करके उसे लोकप्रिय बनाया। घमंडदेव जी ने ब्रज के समीपवर्ती इलाकों में भी रास का प्रचार-प्रसार किया तथा गौड़ीय सम्प्रदाय के नारायणभट्ट स्वामी ने ब्रज में अनेक रास-मंडलों की स्थापना की और पूर्व से चले आ रहे रास नृत्य में लीलाओं का समावेश करके उसे और अधिक जनप्रिय बनाया।

वर्तमान काल में रासलीला से सम्बन्धित कार्यक्रम बड़े-बड़े वातानुकूलित सभागृहों (ए॰सी॰ ऑडिटोरियम्स) में दिखाए जाने लगे हैं, जहाँ मंच से सम्बन्धित सभी उपकरण, दर्शकों की कुर्सियाँ, ध्वनि तथा प्रकाश-व्यवस्था सब कुछ व्यवस्थित रूप से तैयार मिलता है। इसीलिए अब रास-मंडलियों को विदेशों में भी निमंत्रित किया जाने लगा है और व्यवस्था को ध्यान में रखकर रासधारी अपनी तैयारी करते हैं।

प्राचीन युग में संस्कृत नाटकों के अभिनय के लिए पक्के प्रेक्षागृह बनाये जाते थे जिनके ध्वंसावशेष आज भी मिलते है। संभवतः उसी प्राचीन परंपरा के अनुसार रास का व्यापक प्रचार करने के लिए श्री नारायण भट्ट जी ने भगवान कृष्ण के कुछ प्रमुख रासलीला स्थलों पर पक्के रासमंडलों का निर्माण कराया था जो आज भी ब्रज क्षेत्र में विद्यमान है। नारायण भट्ट द्वारा स्थापित इन रासमंडलों की चर्चा हम पहले कर चुके है।

ब्रज क्षेत्र में रासमंडल दो प्रकार के पाये जाते है : (१) एकदम खुले, मुक्ताकाशीय (२) पटी हुई छत वाले। ब्रज क्षेत्र में प्रचुर मात्र में खुले रासमंडलों का ही निर्माण हुआ। पटे हुए रासमंडल केवल वृन्दावन में ही विशेष रूप से देखे जाते है। रास वास्तव में एक खुला मंच है, अतः उसके मंच की छत को पाटने की आवश्यकता नहीं होनी चाहिए थी, परंतु वृन्दावन में इन पटे मंचों का निर्माण कदाचित इसलिए किया गया क्योंकि रसिक भक्तों ने वृंदावन को नित्य रास की भूमि के रूप में मान्य किया था और नित्य रास की इस भूमि में नियमित रूप से सदैव रास होते रहें और रास के रसिक उनसे तृत्य होते रहे वह व्यवस्था हित हरिवंश जी के समय में ही हो गई थी। ऐसी दशा में वर्षा ऋतु में इन्द्रदेव को और ग्रीष्म की तपन में सूर्यदेव को नित्य रास के इन नियमित आयोजनों में व्याघात करने का अवसर में व्याघात करने का अवसर न मिले इसलिए वृंदावन में पटे हुए रासमंडलों की स्थापना आवश्यक समझी गई होगी।

## मुक्ताकाशीय ( खुले ) रासमण्डल–

ब्रज क्षेत्र के खुले रासमंडलों को लें या वृंदावन के पटे हुए रासमंडलों को, यह सभी मंडलाकार है। ब्रज क्षेत्र के खुले रासमंडल भूमि से लगभग २ फुट से लेकर ४ फुट के करीब तक ऊंचे हैं जो चूने से बनाये गये हैं। इन रासमंडलों को प्रकृति की उन्मुक्त गोद में पूरी तरह सब ओर से खुला रखा गया है। इन रासमंडलों का व्याप्त लगभग १० गज है। उन पर ऊपर चढ़ने के लिए प्राय: सीढ़ियां नहीं बनाई गई, क्योंकि इन रासमंडलों पर दर्शकों के चढ़ने की कोई आवश्यकता नहीं होती। पहले रास के भक्त प्राय: खड़े होकर ही रास देखते थे, इसलिए इन रासमंडलों की ऊंचाई इस हिसाब से रखी गई है कि उसके चारों ओर दर्शकों दूर-दूर तक खड़े होकर भली प्रकार रास का आनंद ले सकें। इन रासमंडलों पर एक ओर पक्का सिंहासन भी बना दिया गया है जिसमें आगे सीढ़ियां दे दी गई है। सीढ़ियों के पीछे पक्का चूने का सिंहासन के ढंग का तकिया बनाया गया है। रास के समय इन सिंहासनों पर गलीचा या रंग-बिरंगे वस्त्र बिछा दिये जाते हैं और उनमें से सबसे ऊंची सीढ़ी पर रास के समय प्रिया-प्रियतम तथा उनके नीचे सखी विराजमान होती है। सिंहासन के आगे मंडलाकार चबूतरा नृत्य और लीला प्रदर्शन के उपयोग में आता है। कहीं-कहीं इन रासमंडलों में सिंहासन के पीछे वृक्षावली भी है जो रासमंडल के आकर्षण को बढ़ाने के साथ ही स्वरूपों की धूप-ताप और आंधी-पानी से रक्षा करने में सहयोग देती है।

ब्रज क्षेत्र में यह रासमंडल बड़े पवित्र और दर्शनीय समझे जाते हैं और ब्रज के भक्त यात्री इनको भी श्रद्धा से नमन करते है। जब यह रासमंडल बनाये गये होंगे तब इन पर शायद बराबर रास किये जाते रहे होंगे परंतु वर्तमान में तो केवल ब्रज के बचे हुए रासमंडलों का उपयोग ही रास के लिए हो रहा है। ब्रज के यह खुले रासमंच या तो केवल ब्रजयात्रा के समय उपयोग में लाये जाते हैं अन्यथा राधाष्टमी पर बरसाने क्षेत्र में स्थित रासमंडलों का बूढ़ी लीलाओं के अवसर पर उपयोग होता है। आज रास के यह मंच दर्शनीय अधिक परंतु उपयोगी कम है।

### बने हुए रासमंडल–

ब्रज में जो पक्के पटे रासमंच हैं उनका वहां नियमित रूप से रास के नियमित रूप से रास के लिए निरंतर उपयोग होता है। टोपी वाली कुंज (वन चन्द जी के डोल) जैसे रासमंडलों पर तो कभी-कभी एक दिन में

चार-पांच रास भी हो जाते है। एक मंडली के रास के समाप्त होने पर दूसरी मंडली वहां अपना कार्यक्रम आरंभ कर देती है। वृन्दावन के यह पटे हुए रासमंच ब्रज के चूने से बने रासमंडलों में कहीं बड़े और ऊंचे हैं। यह रासमंडल पत्थर से बनाये  गए हैं और इन पर दर्शकों के भी ऊपर चढ़कर बैठने की व्यवस्था है।

वृंदावन के यह रासमंडल भूमि से लगभग चार पांच गज की ऊंचाई पर बनाये गये हैं जिनमें निधिवन, सेवाकुंज, राधारमण, कालिय दह, बड़ा रासमण्डल(चीरघाट), वंशीवट आदि मुख्य हैं। (देखें चित्र १,२,३,४,५,६,७) इन मंडलाकार रासमंडलों के किनारों पर लगभग डेढ़ फुट ऊंचे पत्थर के गवाक्ष भी चारों ओर लगाये गये हैं जिनसे जहां रासमंडल का अलंकरण हुआ है वहां रास दर्शकों की भीड़ में बालकों के असावधानी के कारण नीचे गिर जाने का भय भी नहीं रहा है। गवाक्षों के आगे चारों ओर कुछ भूमि खुली है और उसके आगे पत्थर के गोल खंबे गाड़ कर बीच में छत खड़ी की गई है। छत के नीचे एक ओर पत्थर का सीढ़ीदार पक्का सिंहासन बनाया गया है तथा सिंहासन के पास ही सीढ़ी दूर पर एक-दो कोठरी बना दी है जो रास के समयश्रृंगारघर का काम देती है।

रास के समय इन रासमंडलों पर फर्श आदि बिछा दिये जाते हैं और सिंहासन के आगे कुछ हिस्से पर सफेद चांदनी बिछा दी जाती है जिस पर नृत्य और लीला होती है। चांदनी पर सिंहासन के सामने के दूसरे सिरे पर रास के समाजी बैठते हैं और बीच का भाग रास के लिए छोड़ दिया जाता है। चांदनी के तीनों ओर दर्शक बैठ जाते हैं क्योंकि इन रासमंडलों में सिंहासन के पीछे इतना स्थान नहीं होता कि वहां दर्शक बैठ सकें या खड़े हो सकें। सिंहासन के पीछे एक साधारण या गलियारा ही छोड़ा जाता है जो लीला के पात्रों को श्रृंगार घर तक जाने या प्रबंधकों के निकलने के लिए ही काम में आ सकता है। इस मंच पर धूप और वर्षा में भी रास हो सकते हैं, इस दृष्टि से ये सुविधाजनक हैं। इन रासमंडलों को ऐसे ढंग से बनाया गया है कि गर्मी में भी वहां हवा का झोंका लगता रहता है और घुटन प्रतीत नहीं होती। ४००-५०० व्यक्ति तक इन बड़े रासमंडलों पर एकसाथ रास देख सकते हैं।

जैसा कि पुराने रासमंडलों को देखने से प्रतीत होता है कि पहले मंच चारों ओर से खुला रखा जाता था और दर्शकों को चारों ओर से रास देखने की सुविधा थी, परंतु उस समय भी जिस ओर पक्का सिंहासन बनाया जाता था उस ओर से खड़े होकर दर्शक को रास का पूरा आनंद

प्राप्त करना कठिन होता होगा, क्योंकि सिंहासन स्वयं दर्शक और रास के पात्रों के बीच एक व्यवधान का कारण था। संभवत: इसीलिए बाद में वृंदावन में जो पटे हुए रासमंडल बने उनमें तीन ओर ही दर्शकों के बैठने की व्यवस्था को स्वीकार किया गया।

रासलीलानुकरण से जुड़ी विभिन्न सम्प्रदायों ने इस परम्परा का उत्तरोत्तर क्रमिक विकास कर इसका पर्याप्त संवर्द्धन किया है। ब्रजमण्डल की इस महत्वपूर्ण परम्परा में सगुण भक्ति की कृष्णभक्ति धारा के अनेक रसिक महानुभावों ने अपना जो अमूल्य योगदान दिया है, उससे संप्रदायिक स्तर पर अनेक उपधाराएँ प्रवाहित हुईं। रासलीला को सैद्धान्तिक एंव व्यवहारिक रूप से प्रतिष्ठित करने वाली इन उपशाखाओं में चैतन्य सम्प्रदाय, राधाबल्लभ सम्प्रदाय, निम्बार्क सम्प्रदाय, बल्लभ-सम्प्रदाय, ललित सम्प्रदाय, हरियाली सम्प्रदाय सहित अनेक उपासकों ने अपने अराध्य देव की भक्ति के साथ रासलीला के सैद्धान्तिक, व्यवहारिक एवं अभिनयात्मक प्रणाली को प्रतिष्ठित किया है। रासलीलानुकरण साहित्य के अन्तर्गत गदाध रभट्ट, ललितकिशोरी, नारायण भट्ट, सेवक जी, चाचाहित वृन्दावनदास, दामोदर स्वामी एवं ध्रुवदास, सूरदास, नंददास, परमानन्ददास, छीवस्वामी, गोविन्द स्वामी सहित सभी सम्प्रदायों के अनेकानेक महा-मनीषियों ने रास सम्बन्धी भक्ति से ओतप्रोत चमत्कृत कर देने वाले पद रचे हैं, जिनका आस्वाद आमजन मानस आज तक ले रहा है।

## चैतन्य ( गौड़िया ) सम्प्रदाय में रासलीला-

श्री चैतन्य ने अपने समय में, जहाँ एक और रासलीला अनुकरण को स्वयं गति दी थी, वहीं दूसरी ओर रासलीला निरूपण की दृष्टि से अपने अन्तरंग परिकरों को भी सर्व प्रकार से अनुप्राणित किया था। श्रीराधा-कृष्ण युग की चैतन्य द्वारा प्रवर्तित रस साधना ने, इस प्रकार गौड़ीय सम्प्रदाय को चैतन्य-रस से सिक्त कर, लीला-गान के उत्कर्ष को सर्वोच्च स्तर पर प्रतिपादित कर गतिमान बनाया था। चैतन्य के परम अन्तरंग अनुयाइयों में श्रीरूप सनातनादि षट् गोस्वामियों ने यथार्थत: एक ओर तो अपने भक्ति युक्त असाधाारण पांडित्य से मधुर रस की संगोपांग स्थापना के साथ रासलीला के उपासनात्मक एवं सैद्धान्तिक रूप की प्रतिष्ठा की ओर दूसरी ओर अपने सम्प्रदाय के अनुगत ब्रजभाषा-भाषी समर्थ रसिक भक्त कवियों को रासलीला निरूपण के निमित्त प्रेरित किया। रासलीला अनुकरण की दृष्टि से श्रीनारायण भट्ट के साथ श्री सनातन गोस्वामी ने विस्तार से चर्चित, विविध वनों में स्थित रासमण्डलों की खोज

भी की थी। इतना ही नहीं, रासलीला विषयक पौराणिक एवं पारम्परिक मान्यताओं को सुरक्षित रखते हुए चैतन्य सम्प्रदाय के इन परम रसिक एवं प्रकाण्ड विद्वान षट् गोस्वामियों ने संस्कृत एवं ब्रजभाषा के साहित्य में, समान स्तर पर अपनी रचना शैली में रासलीला के अभूतपूर्व विकास की प्रतिष्ठा के साथ असाधारण कीर्तिमान प्रदर्शित किया था। चैतन्य सम्प्रदाय (गौडीय) के अन्तर्गत जिन ब्रजभाषा-भाषी रसिक भक्त कवियों ने रासलीला निरूपण की परम्परा को प्रसरणशील बनाये रखा है, उनमें श्रीगोपाल भट्ट, जन्मकाल 1503 ईसवी, गो0 रामराय, जन्म सं.1540वि., श्री माधुरी जी, स्थितकाल सं. 1600-1700वि., श्री सूरदास मदन मोहन रचना काल सं. 1590-1600 वि., श्रीगदाधर भट्ट, षट् गोस्वामी में श्री रघुनाथ भट्ट के समकालिक, श्री ब्रह्म गोपाल, 16वीं शती, श्री प्रियादास, जन्म सं. 1740 वि. से पूर्व (रचनाकाल सं. 1794 वि.), श्री ललित किशोरी, जन्म सं. 1882-1930 वि. मृत्यु (शाहकुंदन लाल), श्री ललित माधुरी, जन्म सं. 1885-1942 वि. मृत्यु (शाहकुंदन लाल) आदि प्रमुख हैं।

## श्री गोपाल भट्ट ( चैतन्य सम्प्रदाय )-

गौड़ीय(माधवगौडेश्वर सम्प्रदाय) सम्प्रदाय के प्राण महाप्रभु चैतन्यदेव के परम अन्तरंग परिकरों में श्रीगोपाल भट्ट का नाम भी षट् गोस्वामीयों में सुप्रतिष्ठित है। सर्व श्री रूप गोस्वामी, सनातन गोस्वामी, रघुनाथदास गोस्वामी, रघुनाथ भट्ट गोस्वामी, गोपाल भट्ट तथा जीव गोस्वामी ने ही षट् गोस्वामियों के रूप में अपनी साधना से जो गौरव प्राप्त किया वह सम्प्रदाय के इतिहास में अनन्त काल तक के लिए नित्य एवं अक्षुण्ण है। आचार्य बलदेव उपाध्यायके अनुसार गोपाल भट्ट का जन्म सन् 1503 ई0 में हुआ था।[1] इनका निवास स्थान श्रीरंगम क्षेत्र रहा है। इनके पिता का नाम श्री वेंकट भट्ट था। श्री प्रबोधानन्द सरस्वती, गोपाल भट्ट के चाचा थे। महाप्रभु चैतन्य देव के आदेशानुसार ही श्रीरूप सनातन ने, इन्हें अपने बन्धु के रूप में स्वीकार किया था। श्री राधारमण युगल ही गोपाल भट्ट के परम आराध्य थे। 'वृन्दावनस्थ' छः गोस्वामियों में से गोपाल भट्ट ने ब्रजभाषा में रचना की।[2]

**श्री गोस्वामी रामराय**- गो. रामराय का जन्म सम्वत् 1540 वि. में हुआ था। ये श्री नित्यानन्द प्रभु के कृपापात्र एवं परम रसिक थे। भक्त भाल के

१. भागवत सम्प्रदाय, आचार्य बलदेव उपाध्याय, पृ 512।

२. बंगला साहित्य का संक्षिप्त इतिहास - डा. सत्येन्द्र पृ. 138।

रचियता श्री नाभादास जी ने, इन्हें, जहाँ एक और सारस्वत ब्राह्मण लिखा है, वहीं दूसरी ओर उन्हें परम विरक्त, संयमी, संतसेवी, कीर्तन रसिक, श्रीकृष्ण भक्त भी बताया गया है।[1] डॉ॰ शरण बिहारी गोस्वामी ने गो. रामराय के विषय में लिखा है- ''इनके वंशज कहलाने वाले सज्जन इन्हें श्री चैतन्य का अनुयायी मानते हैं। इनके द्वारा रामराय जी की जिन रचनाओं का प्रकाशन हुआ है, उनसे भी ये गौड़ीय ही ज्ञात होते हैं।''[2] कुछ विद्वान इन्हें बल्लभ सम्प्रदाय का भी मानते हैं। गो. रामराय जी कृत 'आदिवाणी' नामक ब्रजभाषा की काव्य रचना अत्यन्त प्राचीन तथा कीर्तन प्रेमियों के मध्य समाहत है। एक सौ पदों से युक्त यह ग्रन्थ अपने मूल रूप में श्रीयुगल की विविध लीलाओं के माधुर्य को ही प्रकट करता है। अपने पदों में सखी-मञ्जरियों के अनुरूप ही परिलक्षित है।

रासलीला निरूपण के अन्तर्गत गो. रामराय जी ने, वंशीवादन, मण्डलरास, रासलीला नृत्य, जल विहार, वन विहार एवं रतिरमणोत्सव वर्णन अत्यन्त सरस तथा मनोहारी ढंग से किया है।

## श्री माधुरी जी-

चैतन्य (गौड़ीय सम्प्रदाय) सम्प्रदाय के अनुगत श्री माधुरीदास जी, सम्प्रदाय के आचार्य श्री रूप गोस्वामी के शिष्य थे। इनका स्थित-काल तो सम्वत् 1600-1700 तक माना गया है, किन्तु रचना काल सं. 1687 वि. केलिमाधुरी के अनुसार ही मान्य है।[1] मथुरा से गोवर्धन की ओर ढाई कोस के अन्तर पर, माधुरी कुंड ही माधुरी जी के साधना स्थल के रूप में प्रसिद्ध है। इस कुण्ड के विषय में लिखा है- ''गोस्वामी श्री नारायण भट्ट जी द्वारा विरचित ब्रज भक्ति विलास ग्रंथ के मत में श्री प्रिया जी की अति सुहावनी माधुरी कुण्ड है। कुण्ड के पास एक सुन्दर मन्दिर है। मथुरा निवासी कृष्ण गंगा स्थान के महन्त बाबा श्रीबलरामदास जी की देखरेख में हैं।''[2] यद्यपि मिश्र बन्धुओं ने किंचित् जानकारी के आधार पर इन्हें साधारण कवियों में ही रख है, तथापि ये असाधारण कोटि के विद्वान तथा श्रीराधा युगल के लीला गान के अनन्य रसिक गायक थे। इनकी रचनाओं में उत्कण्ठा माधुरी, वंशीवट विलास

---

१. सम्बत् सोलह सो असी सात अधिक हियधार।
केलि माधुरी छटि लिखी श्रावण बदि शुक्रवार।।
केलि माधुरी (श्रीमाधुरी जी), दो, 129

२. माधुरी वाणी की भूमिका, श्रीकृष्णदास-कुसुम सरोवर, पृ 1

माधुरी, केलिमाधुरी, वृन्दावन विहार माधुरी, दानमाधुरी, मानमाधुरी, होरी माधुरी तथा प्रिया जू की बधाई-ग्रंथ के रूप में प्रतिष्ठित हैं। अपने ''नव भक्तमाल'' में श्री राधाचरण गोस्वामी ने इनके विषय में एक परिचय:त्मक छप्पय भी लिखा है।[1]

श्री माधुरी जी विरचित-उत्कण्ठाओं में कवि का प्रेम, वियोगजनित वेदना तथा श्रीकृष्ण के प्रति अनन्य अनुराग का वर्णन है। वंशीवट माधुरी में युमना-पुलिन के विविध विलास रूपों का चित्रण हैं, केलिमाधुरी में श्रीयुगल की दिव्य केलि का निरूपण है, वृन्दावन माधुरी में जीवन की शोभा परिलक्षित है, दान माधुरी में श्रीकृष्ण का हास-परिहास दृष्टिगोचर है,मान माधुरी में प्रिया जी के मान का दर्शन है और होरी माधुरी में होली के माधुर्य का भी अत्यन्त सरस रूप दिखाई देता है। रासलीला के जिन रूपों का चित्रण श्री माधुरी जी ने किया है, वे सब वंशीवट माधुरी के अन्तर्गत विद्यमान है। यहाँ रासलीला का प्रारम्भ दिन में श्रीयुगल के द्वारा किए गये नौका विहार के बाद सन्ध्योपरान्त चन्द्रोदय पर होता है। रासलीला की इच्छा से जहाँ एक ओर श्रीयुगल उपयुक्त साज-सज्जा के साथ, परस्पर पुलिन की शोभा को देखते हैं, वहीं दूसरी ओर मनमोहन की मुरली को सुनकर समस्त सहचारियाँ उपस्थित होकर अपने यूथों सहित रास मण्डल बना लेती हैं।[1]

श्री माधुरी जी की मान्यता के अनुसार यह रासलीला शरद् की पूर्णिमा को वंशीवट पर आयोजित हुई थी। इस रासलीला में सखियों से आवेष्ठित श्री युगल परम उत्साह के साथ, विविध प्रकार की क्रीड़ायें करते हुए सखियों के मध्य विद्युत और मेध के समान शोभा को प्राप्त करते हैं। मुकुट की लटक पीताम्बर की फहरान तथा मधुर मन्द मुस्कान सभी को विमोहित कर लेती है।[2] दिव्य एवं अप्राकृत रस-समूह से परिपूर्ण यह रासलीला, अनेक प्रकार के खेलों से युक्त होकर, प्रेम पारंगत श्रीराधा-माधव के, कोटि-कोटि भावों से सम्पन्न असाधारण नृत्य एवं नाना गतियों से

---

१. उज्ज्वल रस अनुराग, राग मारग विस्वासी।
राग-रग में कुशल, माधुरी कुण्ड निवासी।।
-नव भक्तमाल (गो. राधाचरण.) पृ. 30 ।

2. नौका में नव कुमरि मिलि, कीने नवल विलास।
दिनमणि अस्ताचल चल्यौ, प्रगट्यौ निसा निवास।।247।।
-माधुरी वाणी, वंशीवट माधुरी, पृ 41-42 ।

3. विविध विलास के हुलास न कहै परत, खेलत रसिक रासमण्डल रहसिकै।
सखिन के जोर चहुँओर जुरिठाढ़े भये, मध्य घनदामिनी से रहे लाललसिकै।
- माधुरी वाणी, वंशीवट माधुरी, पद 266 ।

युक्त भ्रू-भंगिमाओं के साथ, श्रीयुगल के अकल्पनीय चापल्य को प्रस्तुत करती हैं।[1] नृत्य के साथ भ्रू-विलास, मंद हास एवं विविध रूपों का रास-विलास कोटि-कोटि ब्रजरमणियों को परमानन्दित करता हुआ सा दिखाई देता है। गीत-गायन सहित नृत्य में श्रीयुगल की लाधवता यथावर्त: अनेक सरस भावों को उत्पन्न करने में पूर्णत: समर्थ है।[2]

## श्री सूरदास मदन गोपाल-

श्री सूरदास मदन मोहन बादशाह अकबर के समय में संडीला नामक स्थान के अमीन थे। इनका पहले का नाम था- सूरध्वज।[3] जाति के ये ब्रह्मण थे। ठाकुर श्री मदन मोहन एवं श्रीकृष्ण चैतन्य ही इनके इष्ट थे। एक बार संडीले में मालगुजारी का सरकारी धन तेरह लाख रूपया इन्होंने साधु सन्तों के भण्डारे में व्यय कर दिया था, किन्तु सम्राट अकबर इनसे रुष्ट नहीं हुआ, चरन आमंत्रण भेजा; किन्तु तब तक ये वृन्दावन आ चुके थे। अकबर के सादर आमंत्रण पर भी ये नहीं गए और जीवन पर्यन्त वृन्दावन में ही रहे। महाप्रभु चैतन्य देव के पार्षद एवं सम्प्रदाय के आचार्य श्री सनातन गोस्वामी ने इन्हें वैष्णवी दीक्षा से विभूषित किया था। ठाकुर मोहन जी के सेवक होने के कारण ही इनका नाम सूरदास मदन मोहन सुविख्यात हो गया। यही नाम इनके समस्त पदों में दृष्टिगोचर होता है। श्री सूरदास मदन मोहन संगीत एवं काव्य के मर्मज्ञ होने के साथ-साथ अनन्य रसिक भी थे। इन्हें सुहृद सहचरी भी कहा जाता है। मधुर रस परिपूर्ण रचनायें, आपकी अत्यन्त उच्चकोटि की दृष्टिगोचर हुई है। विरचित होने के उपरांत इनके पद अत्यन्त शीघ्रता से सर्वत्र प्रचलित हो जाते थे। इनके पद श्रृंखलाबद्ध न होकर, स्फुट एवं स्वच्छंद रूप में विद्यमान हैं। एक सौ चवालिस (144) पदों का इनका एक संग्रह स्वर्गीय बाबा कृष्णदास कुसुम

---

1. रहसि रहसि बिहसनि नाना रसनि सों, रास रसखेलत रसीलेरसरंग में,
कोककला कोविद सुधंग संग नाचे-मिलि, उपजत कोटिक तरंग अंग-अंग में।
-मधुर वाणी, वंशीवट माधुरी, पद सं. 2167।

2.नृत्य लाल भ्रू-विलास मन्द-मन्द चारु हास, रास में विलास केलि कोटि-कोटि कामिनी,
कुण्डल मृदु गण्ड लोल चंचल अचल सुलोल, चमकन शोभित कपोल-कनक धामिनी।।
-माधुरी वाणी, वंशीवट माधुरी, प.सं. 268।

3. वाणी सूरदास मदन मोहन, राजस्थान प्रेस- जयपुर, सं. 2000 विक्रम
भूमिक पृ. 1

सरोवर मथुरा वालों ने, ब्रजवासी पुस्तकालय, वृन्दावन के श्री राधेश्याम गुप्त से संवत 2015 विक्रमी में प्रकाशित कराया था। श्री नाभादास जी के भक्त माल में श्री सूरदास मदन मोहन का परिचय छप्पय के माध्यम से दिया गया है।[1]

अपनी वाणी साहित्य में श्री सूरदास मदन मोहन ने जहाँ एक ओर सैद्धान्तिक उपदेशों के साथ श्रीकृष्ण की बाललीला, बधाई, रूप-सौन्दर्य रमणोत्सव का निरूपण किया है, वहीं दूसरी ओर रासलीलान्तर्गत मुरली बादन संगीत एवं नाट्य समन्वित रासलीला, नृत्य, विनोद, फूल डोल, डिंडोल, विवाह एवं महारासलीला का भी वर्णन अत्यन्त सरस एवं उत्कृष्ट रूप में किया है। रासलीला के निमित्त श्रीकृष्ण के मुरली वादन कौशल की व्यंजना करते हुए, श्रीसूरदास मदन मोहन ने लिखा है कि श्रीकृष्ण द्वारा यमुना तट पर मुरली वादन करते ही आनन्द नक्षत्रों, विविध पवनों तथा चराचरों की गति विमोहित हो गई और ब्रजदेवियों में श्रीकृष्ण मिलन की उत्कंठा प्रबल हो गई। इतना ही नहीं वे समस्त मर्यादाओं से परे हेकर यमुना तट पर अपने परम प्रियतम के समक्ष पहुँच भी गईं।[2] कामदेव तो केवल श्रीकृष्ण सौन्दर्य ही देखकर नत मस्तक हो गया था।

इस मण्डलाकार रासलीला में अभिनय तो परम उत्कर्ष युक्त था ही, साथ ही श्री युगल के नृत्य कला प्रदर्शन में होड़ा होडी चल रही थी। निश्चय ही रास मण्डल का यह आनन्द नित्य एव अनिर्वचनीय हो गया था। प्रिया जी को श्रमित देखकर, श्रीहरि ने पुनः श्रम बिन्दुओं का निवारण किया था।[3] इतना ही नहीं परस्पर एक-दूसरे के स्कध प्रवेश पर अपनी भुजाओं को रखे श्रीयुगल यमुना पुलिन के रस उमंगपूर्ण रासोत्सव में मेघ विद्युत की भांति सुशोभित होकर अनेक प्रकार से विनोद कलाओं के साथ क्रीड़ित थे।[1] इस रासलीला के अन्तर्गत ही तट स्थित निकुंज में, सूरदास

---

१. गान काव्य गुन रासि सुहृद सहचरि अवतारी।
राधाकृष्ण उपास रहसि सुख की अधिकारी।।
- भक्त माल (श्री नाभादास) पृ. 60-126 ।

2. सांवरे मुरली अधर धरी, सुनि सिद्ध समाधि टरी।
सुनि थके देव विमान, सुर वधू चित्र समान।।
- श्री सूरदास मदन मोहन वाणी, पद 15

3. आलीरी, रासमण्डल नृत्य करत मदन मोहन,
अधिक सोहन लाड़िली रूप निधान।
- सूरदास मदन मोहन की वाणी, पद 28, (संस्करण सं. 2015 वि.)

मदन मोहन ने गीत वादन के साथ ललितादिक सखियों के मण्डल के मध्य फूल डोल के दृश्य का चित्रांकन किया है।[2]

जिस प्रकार रासमण्डल के मध्य रजनी पति चन्द्रमा सुशोभित होता है उसी प्रकार ब्रज देवियों के चमत्कृत मण्डल के मध्य श्री युगल हिंडोल की सौन्दर्य छटा एवं आनन्द का प्रसारण कर रहे थे।

## श्री गदाधर भट्ट-

चैतन्य अथवा गौड़ीय सम्प्रदाय के रासरसिक श्री गदाधर भट्ट, सम्प्रदाय के सुप्रसिद्ध आचार्य तथा षट् गोस्वामियों में सुप्रतिष्ठित श्री रघुनाथ भट्ट जी के शिष्य थे। श्री गदाधर भट्ट, उच्चकोटि के भक्त तो थे ही, साथ ही श्रीमद्भागवत की कथा के सरस वक्ता, प्रतिभावन कवि एवं अनन्य रसिक भी थे। न तो इनके निवास स्थान तथा समय के विषय में कोई विवरण प्राप्त होता है और न माता-पिता के ही संबंध में कुछ ज्ञात होता है। इतना अवश्य जान पड़ता है कि ये अत्यन्त प्रारम्भावस्था से ही श्रीवृन्दावन बिहारी-श्रीयुगल के भक्त थे। इन्हीं के पद की किसी से सुनकर वृन्दावन स्थित श्री जीव गोस्वामी ने इन्हें वृन्दावन आने हेतु एक पत्र लिखकर दो साधुओं के द्वारा भेजा था। उन संतों ने जैसे ही कहा कि हम वृन्दावन से आये हैं, वैसे ही तुरन्त श्री गदाधर भट्ट जी भाव-विह्वल होकर वेसुध हो गये। बड़ी कठिनाई से जब वे सावधान हुए, तो संतों ने उन्हें जीव गोस्वामी जी का पत्र दिया। पत्र पाते ही वे वृन्दावन को चल पड़े। श्री जीव गोस्वामी के आग्रह पर भट्ट जी ने पुनः वही स्वरचित पद उन्हें गाकर वृन्दावन में सुनाया था। श्री गदाधर भट्ट जी के विषय में ही श्री नाभादास जी ने अपने भक्तमाल में परिचात्मक छप्पय लिया है।[1] श्री भट्ट जी द्वारा प्रतिष्ठित- श्री मदन मोहन जी का मन्दिर, वृन्छावन के अठखंभा के निकट विद्यमान है। इनकी वाणियों का एक संग्रह श्री राधेश्याम गुप्त ने पुराना शहर वृन्दावन के योग पीठ का तो अत्यन्त प्रभावशाली वर्णन किया ही है, साथ ही विनय, बधाई हरिराम महिमा, यमुना, वंशी, अनुराग, रूप माधुरी, मान, दान, कालियमर्दन, शरद, वसंत, होली, वर्षा, हिंडोल तथा रासलीला आदि का भी अत्यन्त सरस निरूपण किया है। श्री भट्ट जी की मान्यता में भी श्रीकृष्ण द्वारा-वंशी वादन करते

---

१. सज्जन सुहृद सुसील बचन आरज प्रतिपालय।
निर्मत्सर निहकास कृपा करूना की आलय।।
-श्री भक्त माल (श्रीनाभादास कृत) छप्पय-138 ।।

ही ब्रजांगनाओं में श्रीकृष्ण-मिलन के हेतु आकुलता बढ़ जाती थी।[2] यहाँ भी रासलीलान्तर्गत शरद् पूर्णिमा की रात्रि, यमुना का पुलिन, गोपियों की मण्डलाकार उपस्थिति, मण्डल में प्रति गोपी के निकट श्याम-सुन्दर की विद्यमानता, नृत्य के विविध हस्तक, गीत-गायन, वाद्य-वादन, मुरली ध्वनि, भाव समन्वित अभिनय तथा श्री युगल का रास मण्डल में अपरिमित सौंदर्य परिलक्षित है।[3]

रासलीलान्तर्गत ही, श्री भट्ट जी ने संगीत के उत्कर्ष के साथ-साथ श्री युगल की विवाह लीला का भी अत्यन्त सरस एवं अभिनय-चित्रात्मक रूप उपस्थित किया है।[1] विवाहलीला को यहाँ रासलीला का ही एक अंग माना गया है। श्रीयुगल के हिंडोल का निरूपण भी यहाँ रासलीला का ही एक रूप है।[2] और रति-रमणोत्सव, रासलीला की चरम परिणित के रूप में सुप्रतिष्ठत है।[3] सांप्रदायिक रासलीला अनुकरण में आज भी रास मण्डलियों द्वारा भट्ट के पद गाये जाते हैं।

## श्री वल्लभ रसिक जी-

पूर्व उल्लिखित-रसिक प्रवर श्री गदाधर भट्ट जी के दो पुत्र थे, वल्लभ रसिक एवं रसिकोतंस। श्री रसिकोतंस ने संस्कृत का सुप्रसिद्ध ग्रंथ प्रेम पवन लिखा था। इस ग्रंथ में ही श्री रसिकोतंस जी ने वल्लभ रसिक जी को अपने कनिष्ठ बन्धु के रूप में स्वीकार किया है। श्री रसिकोतंस

---

१. ......बंसिका कल हंसिका मुख-कमल-रस राची।
पवन परसत अलक अलिकुस कलहसी माची......।।
-वाणी गदाधर भट्ट की वृन्दावन पद 31(संस्क.2015वि.)

2. आजु मोहन रची रास-रस मण्डली।
उदित पूरण निशानाथ निर्मल दिशा निरखि दिनकर तसुता सुमग पुलिन-स्थली।।
-वाणी गदाधर भट्ट की वृन्दावन पद 49 (संस्क.2015वि.)

3. ....रासविलास व्याहविधि नित प्रति धिरचर मन आनन्दा जू।
शरद निशा दिशा सब निर्मल डहडये पूरण चन्दा जू।।
-वाणी गदाधर भट्ट की वृन्दावन पद 51(संस्क.2015वि.)

4. रंग हिडोंलना मिलि झूलत ये फूलत दोऊ मन ही मन।
अरूण-पीत वर-वसन विराजत अलि गौरें सांवरें तन।।
-वाणी गदाधर भट्ट की वृन्दावन पद 77(संस्क.2015वि.)

5. यह रीत नीकी लागत सीत की।
अंशन भुज घर पोढ़े पिय प्यारी बात करत रसरीत की....।
-वाणी गदाधर भट्ट की वृन्दावन पद 57(संस्क.2015वि.)

एवं श्री वल्लभ रसिक-दोनों ही बन्धुओं ने अपने-पिता रसिक प्रवर श्री गदाधर भट्ट जी से वैष्णवी दीक्षा लेकर, उन्हें गुरु रूप में माना था। इस प्रकार ये दोनों बन्धु श्री गदाधर भट्ट जी के पुत्र भी थे और शिष्य भी। श्री वल्लभ रसिक श्री युगल के अनन्य भक्त तो थे ही, साथ ही ब्रजभाषा के समर्थ एवं मधुर कवि भी थे। मुख्यत: इनके वाणी-साहित्य का वर्ण्य विषय श्रीराधाा-माधव रासलीला आदि बिहार ही है।

## राधाबल्लभ सम्प्रदाय प्रमुख रासलीला-

गो. हितहरिवंश ने वेणुवादन से रासलीला का निरूपण, प्रारम्भ किया। राधाबल्लभ सम्प्रदाय सम्मत रासलीला में, गो. जी ने, जहाँ एक ओर, श्रीकृष्ण का प्रेमरूपी दुर्लभ प्रसाद, ब्रज की किशोरी भावना, सखी-भावना, श्रीराधा-कृपा, रासलीला चिन्तन रासलीला-प्रवेश की आकांशा तथा रासलीलोत्सव में सेवा के दायित्व की कामना आदि सम्बन्धी मान्यताओं को प्रतिपादित किया है, वहीं दूसरी ओर रासलीलान्तर्गत, लीला-माधुर्य, प्रमोल्लास, सौन्दर्य-सम्बर्द्धन, रस-चमत्कार, गीत-गायन नृत्य-भेद, हाव-भाव-प्रदर्शन तथा वन विहार आदि का समावेश किया है। गो. श्री हितहरिवंश के अनुसार श्रीकृष्ण के वेणुवादन को सुनकर, देव-मुनि तथा देवांगनायें आदि तक तो मोहित हो गई थीं, साथ ही चन्द्रमा भी, वेणुवादन सहित, भगवान् श्यामसुन्दर की वेष-भूषा को देखकर, मन्द गति को प्राप्त हो गया था।[1]

त्रिभंगी मुद्रा से, यमुना तट पर खड़े होकर, वेणुवादन करते ही, ब्रजांगनायें सभी धर्मों का परित्याग करके भगवान् श्यामसुन्दर के रासलीलोत्सव में भाग लेने हेत वहाँ पहुँच गयीं। शरद की धवल चन्द्रिकामयी रात्रि में, शीतलमंद सुगंध पवन के बीच रासेश्वर श्रीकृष्ण ने रास-क्रीड़ा। का शुभारम्भ किया था। गो. श्री हित हरिवंश जी इस दिव्य रासलीला को रस सागर की संज्ञा प्रदान की है। इस रस समूह के प्रसारण से समस्त भुवन ते विमोहित थे ही, साथ ही नक्षत्र-गण चकित चन्द्रमा थकित एवं साक्षात मदन (कामदेव) विमोहित हो गए थे।[1]

---

१. मै जु मोहन सुन्यौ वेणु गोपाल की।
व्योम मुनियान, सुर नारि विथकित भई।
-स्फुटवाणी (गो. हितहरिवंश) पद -13,

श्री हितहरिवंश जी के अनुसार, इस रासलीलालोत्सव में, ब्रज युवतियों के यूथ में, अभूतपूर्व रूप, गुण, चतुराई एवं शील से सम्पन्न तथा समस्त विभाओं में निष्णात श्री राधा का सौन्दर्य, श्रीकृष्ण के साथ, अनुपम रूप में सुशोभित हो रहा था। यथार्थतः वे (राधा) ही रासलीला की शक्ति-स्वरूपा-मूलाधार के रूप में सुप्रतिष्ठित थीं।[2] सखियों ने, रासलीला में परम प्रवीण प्रिया जी का जैसे ही प्रवेश कराया कि राज जीवन्त हो गया। श्रृंगार-कला में निपुण एवं समस्त अभिनय कला में दक्ष श्री राधा ने प्रवेश करते ही अपनी चेष्टाओं से कामदेव को सर्वप्रकार से परास्त कर दिया।[3] इतना ही नहीं राधा के माधुर्य मण्डिल शोर्य को देखते ही श्रीकृष्ण भी रसमत हो उनका अनुसरन करने लगे।[4]

सुरम्य वृन्दावन के यमुना पुलिन पर, जिस रास लीला का प्रसार, वेणु वादन के साथ, श्रीकृष्ण ने किया था, वह वहाँ एक और ब्रज युवतियों के विराट मंडल में सुशोभित था, वहीं दूसरी और सारंग राग की प्रतिष्ठा में गोपियों के कंकड़-किंकिण एवं नूपुर से समन्वित ताल-मृदंगादि वाद्य ध्वनियों से परिपूरित भी था। इतना ही नहीं, इस रसोत्सव में प्रिया जी (राधा) का नृत्य तो अभूतपूर्व था ही, साथ ही अभिनय का कौशल एवं हाव-भाव का प्रकाशन भी रस के परम उत्कर्ष को प्रकट कर रहा था। श्रीकृष्ण के प्रेम में तन्मय ब्रजांगनाओं में से, जिसने जो चाहा, उसे वही श्रीकृष्ण प्रेम-प्रसाद के रूप में प्राप्त हो गया। गो. हितहरिवंश के अनुसार, इस प्रकार रामेश्वर -श्री युगल ने अपने रास-रस रूपी यश का सर्वत्र प्रसार कर दिया।।[1]

---

१. मोहन मदन त्रिभंगी। मोहन मुनि मन रंगी।

मोहन मुनि सघन प्रगट परमानंद गुन गम्भीर गुपाला।

-श्रीहित सुधासिंधु (प्रकाशक-रामलाल श्यामसुन्दर चतुर्वेदी) पृ. 50।

2. आज नीकी बनी राधिका नागरी।

ब्रज जुवति यूथ में रूप अरु चतुराई शील सिंगार गुण सवन में आगरी।।

-श्रीहित सुधासिंधु हितचौर सी (प्रका. रामलाल-श्यामसुन्दर चतुर्वेदी) पृ. 28।

3. आज मेरे कहे चलो मृग नैनी।

गावत सरस सुवति मंडल में पिय सों मिलों भलें पिक बैनी।।

-श्रीहित सुधासिंधु (प्रकाशक-रामलाल श्यामसुन्दर चतुर्वेदी) पृ. 28।

4.देखो माई अबला के बल रास।

अति गज मल निःरंकुश मोहन निरखि बंधे लट पास।

-श्रीहित सुधासिंधु (प्रकाशक-रामलाल श्यामसुन्दर चतुर्वेदी) पृ.43, 44।

निकुंज-रासलीला का निरूपण करते हुए, गो. हितहरिवंश ने लिखा है, कि परम दिव्य वस्त्रांलंकारों से विभूषित श्रीयुगल अभिराम नवनिकुंज के मध्य अपने हाव-भाव-कटाश से ब्रजदेवियों को आनंदित करते हुए, असाधारण ताल भेदों एवं स्वरों के साथ रास-विलास करते हैं।[2] निकुंज की इस रासलीला में वृषभानुनंदिनी का मधुर-गायन, नूपुर ध्वनि, श्रृंगार सज्जा, हंस गति, रसोत्कर्ष से सम्पन्न नृत्य, अभिनय, प्रेम-विलास एवं रमण अपने अप्राकृत एवं दिव्य रूप में प्रतिष्ठत हैं।[3] रासलीला अन्तर्गत रमणोत्सव में तो श्रीयुगल का माधुर्य सीमा से परे होकर, रसिकों के लिए परमानंद का विषय ही बन गया है।

श्री हितहरिवंश द्वारा वर्णित रासलीलान्तर्गत, रासलीला के विविध रूपों में वर-वधू-रास, एवं मोहन भामिनी लीला को भी विधिवत मान्यता प्राप्त है। इस रासलीला में रासेश्वर श्रीकृष्ण दूल्हा एवं श्रीराधा जी दुलहिन के रूप में दृष्टिगोचर होते हैं। भारतीय संस्कृति में प्रेम का यह दिव्य-बंधन अनादिकाल से चला आ रहा है। श्रीयुगल को इस रूप में देखकर ललिता आदि रासलीला की अन्तरंग सखियाँ अत्यन्त प्रफुल्लित हो जाती है।

रासलीलान्तर्गत वन विहार का दृश्य अंकित करते हुए, गो. हितहरिवंश शरद् चन्द्रिका से आवृत्त परम रम्य निकुंज के मध्य श्रीश्यामा-श्याम की माधुर्य रसमण्डित सर्वोत्कृष्ट क्रीड़ा का निरूपण किया है।[4] यह रमणोत्सव जहाँ एक ओर रासलीला के परम अन्तरंग दिव्य प्रेममयी चेष्टा का उद्घाटन करता है, वहीं दूसरी ओर रसिकों के प्राण-स्वरूप श्रृंगार के सर्वोच्च रूप

---

१. आज बन नीको रास बनायो।

पुलन पवित्र सुभग यमुना तट मोहन बेनु बजायो।।

-श्रीहित सुधासिंधु-हितचौरासी(प्रकाशक-रामलाल श्यामसुन्दर चतुर्वेदी)पृ.35,36।

2. बनी वृषभानुनन्दिनी आजु।

भूषन बसन विविध पहिरे तन पिय मोहन हित साजु।

-श्रीहित सुधासिंधु हित(प्रकाशक-रामलाल श्यामसुन्दर चतुर्वेदी) पृ. 41।

3. वृषभानु नंदिनी मधुर कल गाँवै।

बिनट औधर तान चचेरी ताल सो नन्दनन्दन मनसि मोद उपजावै।

-श्रीहित सुधासिंधु हितचौरासी(प्रकाशक-रामलाल श्यामसुन्दर चतुर्वेदी)पृ.60,61।

4. आज बन क्रीडत श्यामा श्याम।

सुभग बनी निसि सरद चांदनी रुचिर कुंज अभिराम।।

-श्रीहित सुधासिंधु हितचौरासी(प्रकाशक-रामलाल श्यामसुन्दर चतुर्वेदी)पृ.33।

माधुर्य को सुप्रतिष्ठित करता है। इस प्रकार वेणुवादन, शरद् रास, मण्डल रास, निकुंज रास तथा वर-वधू एवं मोहन भामिनी लीला रूप युग्म रास के वर्णन के साथ, श्रीहितहरिवंश जी ने अभिनय एवं संगीत के भी विविध रहस्यमय अंगों का भी अत्यन्त सरस चित्रण किया है। वैसे तो राधावल्लभ सम्प्रदाय की परम्परा में अनेक रसिक भक्त कवियों ने नित्य विहार की पद रचना एवं गायन किया है, तथापि रास-रसिक भक्त कवियों मे निम्नलिखित की प्रमुख रूप में रखा जा सकता है। यथा- गो. हितहरिवंश, जन्म 1559-1609 मृत्यु, श्रीदामोदरदास (सेवक जी), जन्म 1577-1610 मृत्य, श्रीहरीराम व्यास, जन्म1567-1669 मृत्यु, श्री ध्रुवदास जी, जन्म 1640-1700मृत्यु, श्रीलालस्वामी, रचनाकाल 1630-1675 तक, श्री दामोदरस्वामी, रचनाकाल1670-1700 तक, श्रीरसिकदास, रचनाकाल, सं. 1743-1790 तक, श्रीअनन्यवली रचनाकाल 1759-1790 तक, श्री वृन्दावनदास रचनाकाल 1759-1844 तक, श्री हीरासखी।

## संत प्रवर हरिराम व्यास और रासलीला-

रसिक प्रवर श्री हरिराम व्यास का जन्म मार्गशीष कृष्ण पक्ष पंचमी बुधवार संवत् 1567 वि. को बुन्देलखण्ड के अन्तर्गत ओरछा में हुआ था। इनके माता-पिता का नाम, अन्त: साक्ष्य के आधार पर श्रीमती देवी तथा श्री पं. समोखन शुक्ल प्रमाणित एवं सर्वमान्य है। पहले श्री व्यास जी का नाम हरिराम था। रघुराज सिंह (रीवा नरेश) कृत 'रामरसिकावली' नामक ग्रंथ में इनका नाम 'व्यासदास' भी परिलक्षित है। श्री हरिराम व्यास जहाँ एक ओर संस्कृत के विद्वान थे, वहीं दूसरी ओर ब्रज भाषा के भी परम मर्मज्ञ थे। श्री व्यास वेदान्त के ज्ञाता, शास्त्रमर्मज्ञ, प्रतिभावान कवि तथा संगीत विद्या के प्रकांड पंडित थे। इनके दीक्षा-गुरु के विषय में कई विद्वानों में मतैक्य नहीं दीखता। कुछ लोग इन्हें श्री समोखन शुक्ल का ही शिष्य मानते हैं और कुछ लोग गो. श्री हितहरिवंश जी का । डॉ0 विजयेन्द्र स्नातक तथा श्री ललिताचरण गोस्वामी भी श्री हरिराम व्यास को गो. हितहरिवंश का शिष्य मानते है, किन्तु अन्त: साक्ष्य के आधार पर श्री वासुदेव गोस्वामी ने यह प्रमाणित किया है कि श्री हरिराम व्यास जी ने अपने पिता समोखन जी शुक्ल ने ही दीक्षा मन्त्र प्राप्त किया था। इस प्रकार श्री वासुदेव गोस्वामी ने इन्हें माध्व सम्प्रदाय का अनुयायी बताया है। यथार्थत: हरिराम व्यास के दीक्षा गुरु के विषय को समस्त उपलब्ध ब्रज-साहित्य का अवलोकन करने से ऐसा ज्ञात होता है कि श्री हरिराम

व्यास जहाँ एक ओर, माध्व सम्प्रदाय के आचार्य श्री माधवदास के शिष्य अपने पिता श्री समोखन शुक्ल के शिष्य थे, वहीं दूसरी ओर स्वामी श्री हरिदास एवं राधाबल्लभ सम्प्रदाय के प्रवर्तक गो. हितहरिवंश जी में अपना सद्‌गुरु भाव रखते थे। इस भाव के कारण ही श्री हरिराम व्यास की उपासना पद्धति पर एवं वर्ण्य विषय की दृष्टि से काव्य रचना शैली पर रसिक सम्राट स्वामी श्री हरिदास एवं श्री हितहरिवंश महाप्रभु का पूर्ण प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। वैसे तो सखीभावोपासकों की मान्यताओं के अन्तर्गत भी श्रीहरिराम व्यास का लगाव उपर्युक्त दोनों ही महान रसिकों की माधुर्य भावना के साथ पर्याप्त रूप में रहा है, तथापि राधाबल्लभ सम्प्रदाय की छाप का प्रभाव इस पर अत्यधिक मात्रा में दीखता है।

सम्वत् 1612 वि. में हरिराम व्यास अपना सर्वस्व त्यागकर वृन्दावन पहुँच गए थे। वृन्दावन के मध्य एक अत्यन्त रमणीय एवं विशाल मन्दिर का निर्माण कराकर इन्होंने अपने इष्ट देव श्री युगल किशोर को प्रतिष्ठित किया था। यह स्थान वृन्दावन में आज भी व्यास घेरा के नाम से सुप्रसिद्ध है। श्री युगल किशोर जी के ये विग्रह सं. 1810 में अहमदशाह अब्दाली के ब्रज पर आक्रमण के समय ही पन्ना ले जाए गए होंगे। जहाँ तक श्री हरिराम व्यास के रचना काल का प्रश्न है, उसे सं. 1590 से 1669 वि. तक ही मानना चाहिए।

अपनी रचनाओं में श्री हरिराम व्यास ने माधुर्य उपासना पद्धति का प्रतिपादन एवं नित्य-विहार का गायन तो किया ही है, साथ ही रासलीला के विविध रूपों का चित्रण कर अपनी रास-रसिकता को भी प्रमाणित कर दिया है। श्री व्यास जी के जीवन में घटित दो घटनायें ऐसी है, जिनसे उनकी, रासलीला के प्रति, अनन्त भावना प्रकट हो जाती है। कविवर श्री रघुराज सिंह (रीवां नरेश) ने अपनी 'रामरसिकावली' में इस घटना का वर्णन अत्यन्त सरस एवं उत्कृष्ट रूप में किया है-

**इक दिन व्यास करत रह ध्याना,**<br>
**रच्यौ भावना रास महाना।**<br>
**नृत्य करत वृषभानु-दुलारी।**<br>
**लिय गत छिन-छिन प्रभा पसारी।**<br>
**नूपुर घूंघरु टूटि गयो जब,**<br>
**व्यास जनेऊ तुरि बांध्यो तब।**

---

१. भक्त कवि व्यास जी (रचयिता वासुदेव गोस्वामी), पृ.65।

**सोह प्रतच्छ राधा-चरन बध्यो जनेऊ ताग।**
**देखत में ब्रज लोग सब, गने व्यास बड़ भाग।।**[१]

श्री व्यास जी की भी भावना में, एक बार, रासलीलोत्सव में नृत्यरत श्री राधिका का नूपुर टूट गया। रासलीला में विध्न पड़ने की आशंका हुईं, किन्तु श्री व्यास जी ने दूसरे ही क्षण अपना यज्ञोपवीत तोड़कर, प्रिया जी के नूपुर को बांध दिया। इस घटना का वर्णन श्री नाभादास जी ने अपने भक्तकाल में तथा श्री प्रियादास (भक्तमाल के टीकाकार) ने अपने विवेचन में किया है।

''भक्त कवि व्यास'' नामक ग्रंथ (इस ग्रंथ में वाणी संकलन के साथ श्री हरिराम व्यास के जीवन चरित्र का भी वर्णन 188 पृष्ठ में किया गया है।) के रचियता श्री वासुदेव गोस्वामी ने इस ग्रंथ के पंचम अध्याय में चमत्कार-प्रसंग के अन्तर्गत, गुरु शिष्य वंशावली नामक ग्रंथ के आधार पर, श्री हरिराम व्यास जी की रासरसिकता से सम्बन्धित, एक दूसरी घटना का भी वर्णन किया है। यथा- ''शरद की निर्मल रजनी में वेत्रवती के तट पर व्यास जी ने ओरछा में रसोत्सव की योजना की। व्यास जी के प्रिय शिष्य ओरछा नरेश महाराजा मधुकर शाह भी उस उत्सव में भाग ले रहे थे। रसिक शिरोमणि व्याज जी आनन्द में नृत्य कर रहे थे। साथ ही प्रेम विभोर भक्त मधुकर शाह भी नाचने लगे। उत्सव की अलोकिकता देखकर आकाश से सुमन वृष्टि होने लगी। पुष्प भूमि पर पड़ते ही स्वर्ण के हो गये।[2] ओरछा निवासी तथा बुन्देलखण्ड के भक्त चरित्र प्रेमी, वंशपरम्परा से यह कथा सुनाते आते हैं। ...............रीवां निवासी एवं ओरछा के राजकवि मुंशी रामाधीन खरे ने संवत् 1992 में ओरछा नरेश को समर्पित तिथि एकादशी प्रकट की है। आगे के उत्सव की अलौकिक छटा का वर्णन करते हुए कहते हैं-

**मंड्यौ रास-मण्डल अखण्ड गुरु-मन्दिर में,**
**तान-राग नीके अति लोने लगे लहरान।**
**गुरु अरु भूपति के दम्पति मंझार हरि,**
**ठाने राम कौतुक समीर लागे हहरान।।**
**बजे लागे बीना-बेनु आपही अनूप स्वर,**

---

१. रासरसिकावली (रघुराजसिंह-रीवां नरेश) पृ. 771।

2. इकदिन व्यास दिवाले में, निसि करी नृत्य सह राजा।
बरसे पुष्प सुवर्ण सुनम तें, मन भौ अति सुख-साजा।।
- लोकेन्द्र ब्रजोत्सव, पृ. 15।

**मधुर अवाज तें, मृदंग लागौ घहरान।**
**धीर लागे जोहन, समीर लागे मोहन,**
**सरीर लागे सोहन, सुचीर लागे फहरान।**
**मचोरास सुधधाम, वृन्दावन वह थल भयौ,**
**तब सुर वृन्दललाभ, स्वर्ण सुमन वर्षन लगे।**[१]

उपर्युक्त घटना से भी श्री हरिराम व्यास की रास-रसिकता स्वयं सिद्ध है। अपने वाणी-साहित्य में श्री हरिराम व्यास ने जहाँ एक ओर रासपंचाध्यायी का वर्णन संक्षेप मे किया है, वहीं दूसरी ओर स्फुट पदों में रासलीला के विविध रूपों का सांगोपांग निरूपण भी प्रस्तुत किया है। यमुना-तट पर श्रीकृष्ण द्वारा वेणु वादन के उपरांत प्रारम्भिक रासलीला, वंशीवट रासलीला, कुंजकेलि रासरमण, वसन्त रासलीला, जल रासलीला तथा पावस रासलीला आदि की झाँकिया भी विद्यमान है। रासलीला के हेतु रामेश्वर श्रीकृष्ण की मुरली-वादन सुनते ही श्रीराधा किशोरी अपनी सहचरियों सहित अपने परम प्रियतम के निकट यमुना-तट पर पहुँच कर रास-रस का पान करती है। इस प्रारम्भिक रासलीला में श्रीकृष्ण वेणु तो बजाते ही हैं, साथ ही प्रिया जी के साथ गीत-गायन एवं नृत्य भी करते हैं। इतना ही नहीं,श्रीयुगल अपनी सखी-सहचरियों के साथ, उनके साथ हाथ पकड़कर, रासमण्डल का निर्माण करके, अनेक प्रकार के रागों, नृत्य हस्तकों, भू-विलासों एवं अभिनयों से सबको विमोहित भी कर देते हैं।[2]

ब्रजान्तर्गत यमुना के सुरम्य तट पर मयूर मण्डल की आकृति वाले रासमण्डल के मध्य हंस-हंसिनी की भाँति सुशोभित होने वाले श्रीयुगल, जहाँ एक ओर ताल के अनुसार अपने नृत्य एवं गायन को गति देते हैं, वहीं दूसरी ओर दिव्य वस्त्रालंकारों से विभूषित होकर अपने मंदहास, भू-विलास, रासलास से परमानन्द को प्रसारित करते हुए, परस्तपर आलिंगन तथा चुम्बनादि माधुर्य चेष्टाओं से रसिकों के जीवन को प्रतिक्षण प्रफुल्लित करते रहते हैं।[3] इस रासलीला में राधा का स्वरबद्ध गायन, विविध हस्तकों से युक्त नृत्य, ताल के अनुसार गति एवं प्रियतम को विमोहित करने वाली

---

१. भक्त कवि व्यास (रचयिता-वासुदेव गोस्वामी) पृ. 114-115 पर उद्धृत।

2. नांचत गोपाल बने, राधासंग गावैं।
वृन्दावन रास रच्यौ, लाल बेनु बजावै।।
-भक्त कवि व्यास जी (वासुदेव गोस्वामी), पृ0 315।

3.नांचति वृषभानु कुंवरि हंस सुता-पुलिन मध्य,
हंस-हंसिनी मयूर-मण्डली बनी।
-भक्त कवि व्यास जी (वासुदेव गोस्वामी), पृ0 312।

माधुर्यमय चेष्टाएँ सर्वप्रकार से प्रीति संवर्द्धन में सक्षम हैं।[1]

शरद् कालिक जिस रासलीला का वर्णन श्री व्यास जी ने किया है, वह भी जहाँ एक ओर वंशीवट पर आयोजित होती है, वहीं दूसरी ओर गोपियों के विराट मण्डल में प्रत्येक दो गोपियों के मध्य श्री श्यामसुन्दर की स्थिति से अत्यन्त अलौकिक रूप में प्रतिभाषित हो जाती है। इस रास में श्री युगल रासमण्डल के मध्य भी, प्रत्येक गोपी के लिए बराबर दर्शनीय रहते हैं।[2] मण्डल के मध्य प्रिया-प्रियतम का रासलीला-नृत्य भृकुटि-विलास तथा हास आदि भी अपने अपूर्ण रूप में परिलक्षित है।[3] परस्पर स्कन्धों पर भुजाओं को रखे हुए श्रीयुगल का कौशल एवं अनन्त कोटि भावों को प्रकाशित करने वाला रास-विलास निश्चय ही, व्यास के शब्दों में अनुपम एवं अभूतपूर्व है।[4]

## निम्बार्क सम्प्रदाय और रासलीला-

संस्कृति साहित्य के साथ-साथ ब्रजभाषा- साहित्य में रासलीला-निरूपण का श्रेय सर्वप्रथम आदि वाणीकार श्री भट्टदेवाचार्य को दिया जा सकता है। इनके गुरु निम्बार्क-पीठ के अधीश्वर श्रीकेशव कशमीरी भट्टाचार्य जी थे। श्रीभट्टेवाचार्य को निम्बार्क सम्प्रदाय में अन्तरंग परिकर स्वरूप-श्रीहित सखी के रूप में स्वीकार किया गया है। ये गौड़ ब्राह्मण कुल में जन्में थे। संवत् 1352 में इन्होंने अपने ग्रन्थ-युगलशतक की रचना भी की थी। जो दोहा युगलशतक (आदि वाणी) के अंत में उपलब्ध हैं, उससे इनका स्थिति-काल लगभग स्पष्ट हो गया है। दोहा इस प्रकार है-

---

१. ................सुरबंधान गान-तान मान जान गुन- निधान,
भ्रुव-कमान, नैन-वान सुर-विमान छाजै,
-भक्त कवि व्यास (वासुदेव गोस्वामी) पृ 393।

2. ...............निकट कल्पतरू वंसीवटा, श्रीराधा रति-गृह-कुंजनि-अटा........।
नवकुंकुम जल बरसत जहाँ, उड़त कपूर-धूरि जहाँ तहाँ........।
-भक्त कवि व्यास-रासपचाध्यायी(गो. वासुदेव) पृ. 404।

3. सरदसुहाई जामिनि, भामिनि रास रच्यौ।
बंसीवट जामुना-तट सीतल, मंद-सुगंध समीर सच्यौ।।
-भक्त कवि व्यास (गो. वासुदेव) पृ. 364।

4. कृष्ण भुजंगिनि बनी नांचति,
गावत गोरी आसावरी।
- भक्त कवि व्यास (गो. वासुदेव) पृ. 363।

**नयनवान पुनिराम शशि गनों अंकगति वाम।**
**युगलशतक पूरन भयो संवत अति अभिराम।।**

नागरी प्रचारिणी सभा, काशी में युगलशतक की जो प्रति विद्यमान् है, उसमें उपर्युक्त दोहे की प्रथम पंक्ति में- 'नयन वाण पुनिराग शशि' पाठ दिया है। इस पाठान्तर- 'म' तथा 'ग' से ही तीन सौ वर्ष का अन्तर होता है। इस सम्बन्धा में निम्बार्क संप्रदाय के वृन्दावन स्थित- श्री जी की बड़ी कुंज (मंदिर) के अधिकारी एवं ब्रजभाषा-तत्व के परम मर्मज्ञ श्री ब्रजवल्लभशरण वेदान्ताचार्य पंचतीर्थ ने पर्याप्त अनुसंधान के पश्चात् यह मत व्यक्त किया हे कि- 'श्री भट्ट के समय का प्रमुख आधार यही दोहा माना जाता है, इससे यह निश्चित होता है कि युगलशतक की रचना सम्वत 1352 में हुयी थी, अत: चौदहवीं शताब्दी के आरम्भ काल से अन्तिम काल तक श्री भट्ट जी के समय का अनुमान किया जाता है।[1] श्रीभट्ट के इस काल का समर्थन अन्य अनेक विद्वानों ने भी अपनी-अपनी खोज के आधार पर किया है और सं॰ 1352 में ही युगलशतक की रचना को प्रामाणिक माना है।

श्रीब्रजवल्लभ शरण जी द्वारा शोध किये गये श्री भट्ट जी के स्थितकाल के समर्थकों में युगलशतक के ब्रजभाषा-टीकाकार एवं वरसाना निवासी(वि॰ सं॰ 1877) महात्मा लाडिलीदास जी ने भी युगलशतक की रचना का समय सं॰ 1352 वि॰ ही स्वीकार किया है। डॉ भाण्डारकर की भ्रांतियों का निराकरण भी ऐतिहासिक आधार पर आचार्य ब्रजवल्लभ शरण जी ने कर दिया है। अन्वेषन के अभाव में कई व्यक्तियों ने, यथा स्वामी प्रज्ञानन्द सरस्वती तथा राजेन्द्र घोष ने, वैष्णव दर्शनर इतिहास में, अक्षयकुमार दत्त ने- 'भारत वर्षीय उपासक सम्प्रदाय' में पुलिन बिहारी भट्टाचार्य ने 'श्रीनिम्बार्काचार्य और ताहर धर्ममत में अनेक भ्रान्ति उत्पन्न करने का जो प्रयास किया है उसका समाधान श्रीब्रजवल्लभशरण जी ने 'समय समीक्षा' नामक स्वतंत्र ग्रंथ में, कर दिया है और सर्वप्रकार से यह प्रमाणित कर दिया है, कि भट्ट का समय वि॰ सं॰ 1352 ही प्रमाणित हे। ब्रजभाषा के अन्तर्गत इसी आदिवाणी रूप में प्रतिष्ठित-युगलशतक के भीतर रासलीला का सांगोपांग निरूपण प्रथमत: किया गया है।

---

१. युगलशतक की भूमिका-श्रीब्रजवल्लभशरण वेदान्ताचार्य, संस्करण वि.सं. 2009, पृ. सं. 9।

अपने ग्रंथ युगलशतक में, श्रीभट्ट देवाचार्य जी ने शरद ऋतु में संपन्न, रासलीला को वंशीवट पर ही स्वीकार किया[2] है। उनकी मान्यता है कि श्री राधा-कृष्ण युगल , चौदह भुवनों की अपार सौन्दर्यराशि को अपने विग्रह में समेटे वंशीवट पर ही रासलीला का आयोजन करते हैं। इस रासलीला में श्रीकृष्ण, राधिका तथा समस्त गोपियाँ सुन्दर किशोर अवस्था से युक्त होकर रासमण्डल में विराज रहे हैं। गोपी-समुदाय तो यहाँ कमल की भाँति सुशोभित है, किन्तु श्रीकृष्णचन्द्र की शोभा, मधुप की भाँति, प्रतिष्ठित है। रासमण्डल की भूमि की स्फटिक मणियों से जढित दृष्टिगोचर होती है। यहाँ गोपियों के विविधा मण्डल विभिन्न जाति वाले कमलों की भाँति जान पड़ते हैं। इतना ही नहीं, इस रास मण्डल में गोपियों के मुख सरोवर में कमल की भाँति, केश सिवार की भाँति, जंघायें कमल-नाल की भाँति अवस्था सोपान की भाँति, मुख-प्रस्वेद कमल दलबिन्दुओं की भाँति, रास का आनन्द, कमल की प्रफुल्लता की भाँति, गोपियों का प्रेम, कमल के सौरभ की भाँति, श्रीकृष्ण का गायन, मधुप गुंजार की भाँति और नृत्य मधुप भ्रमण की भाँति प्रतीत होता है। इसके साथ ही नृत्य में श्रीकृष्ण पीताम्बर तथा माला की उड़ान भ्रमर-उड़ान की भाँति, रास में परस्पर आंलिंगन भ्रमर द्वारा कमल-पुष्पों पर बैठने तथा उड़ने की भाँति, रास में परस्पर आलिंगन भ्रमर द्वारा कमल-पुष्पों पर बैठने तथा उड़ने की भाँति तथा गोपियों का अधरामृत आनन्द के कंद की भाँति रासलीला का वर्णन अनेक प्रकार से अत्यन्त कलात्मक रूपक के साथ निरूपित किया गया[2] है। श्री भट्ट की यह रासाभिव्यक्ति तन्मयता एवं कलात्मकता-दोनों का

---

१. वृन्दावन इक सुन्दर जोरी।

खेलत जहां तहां वंशीवट, नंदनंदन वृषभानु किशोरी.........।

युगलशतक- सहजसुख, पद संख्या-58।

2. मोहन वनजन पाल पै, मधुकर करत गुंजार।

श्री भट लटक सुवासना, अटके नन्दकुमार।।

राजहीं समाज आज मधुप ज्यों मुकुन्दचंद।

उवत उरोज ब्रज सुन्दरी सरोज वृन्द।।

जटित फटिक मणि परासर विविध विद्रुम बीचिकावर वलित राग वल्लवी कुच चक्रवाक विहंग द्वन्द। गोपी मण्डल कमलनाल-घमिलखलित ते सिवाल नाल जानु वय समान तन सुपान स्वेदविंद। नवल बालुका अनूप लावनि गुनगन स्वरूप, दल विकास विमलवास शुद्ध प्रेमता सुगंध। गम्भीर धीर गान गुंज, भ्रमर नितै करत मंजु, तान मान देत लेत सरस सुख सुधा स्वच्छन्द। चीर उड़नि कृष्ण श्याम-श्रृंग तै वैजयन्ति दाम, जुगल मिलन-खटक चलन अरूणता प्रिया स्कन्द। स्वेद प्रयाग-पतित पंक उन्नता हरिवदन टंक, जात जल सु जीव गाहन फूलमाल वेलि वन्द। कार्णिका जुग करन तूल, बहुल कंठ शीशफूल, जलज हमेल बीच रेल रज सिंदूर झलक संद। मधुरद मकरन्द अध र केशर आनन्द कन्द, जै श्रीभट् लपटानि रूचिर नीलाम्बर पीतफन्द।

-युगल-शतक-उत्साहसुख,पद-संख्या-97

अद्‌भुत समन्वय उपस्थित करती है। पद के पढ़ते ही, रासलीला का चित्र, अपने स्वाभाविक रूप में, नेत्रों क समक्ष धीरे-धीरे प्रत्यक्ष हो जाता है। राधा-कृष्ण-गोपी रास का यह विराट रूप इस पद में पूर्णतः प्रतिष्ठित होते हैं, वहीं दूसरी ओर रासमण्डल में श्रीकृष्ण-राधा की स्थिति भी प्रमाणित है। इसके साथ ही ब्रजभूमि-सौन्दर्य, श्रीकृष्ण का गीता-गायन और नृत्य तथा परस्पर आलिंगन, चुम्बन आदि क्रियायें भी स्वतः सिद्ध हैं। रासमण्डल के मध्य तो श्रीराधाकृष्ण की स्थिति को श्रीभट्ट ने स्वीकार ही किया है, साथ ही, यह भी स्वीकार किया है कि श्रीकृष्ण, अपने अनेक रूपों को धारण कर प्रति दो ब्रजांगनाओं के बीच में अवस्थित रहे हैं। अतः रासलीला की श्रेष्ठता के साथ-साथ श्रीकृष्ण का कौशल भी यहाँ स्वतः प्रकट हो रहा[1] है। मण्डलाकार गोपियों की रासलीला-छवि, श्रीराधा-कृष्ण के मध्य में विराजमान होने के साथ-साथ शरद ऋतु में अत्यंत सरस तथा नित्य नूतन है। इस रास के महोत्सव में षडज की प्रतिष्ठा भी परमानन्द होकर प्रसरणशील बन गई[2] है। इस प्रकार भट्ट ने रासलीला का जो स्वरूप सामने रखा है, वह पवित्र होने के साथ-साथ श्रीराधा-कृष्ण सहित गोपी मण्डल रास का व्यापक चित्र उपस्थित करता है।

रासलीला के इस विवरण में, श्रीभट्ट द्वारा, ब्रजभाषा में निरूपित, महारास का ही चित्रण, अधिक स्पष्ट हुआ है। श्रीमद्‌भागवत् की रासपंचाध्यायी में कथित गोपियों के दर्प या सौभाग्य विषयक अहं का कोई संकेत श्रीभट्ट के रासवर्णन में प्राप्त नहीं होता। ऐसा प्रतीत होता है कि यह रास वर्णन,

१. पद-मण्डल मधि विमल जुगल पल सो है।
करत विहार बिहारी प्यारी मार कोटि मन मो हैं।
बहुत रूप घृत सब मन रंजन, इक प्रति अंगना दी है।
मंडलाकार अपार बढ़यो सुख, हरि सम्मुख सब को है।
सबनि मानि मन मुदित हिये में पिय रस रास रच्यौ हैं।
दम्पति अन्तर सजि ग्रीवां भुज भौंह भृकुटि थिर को हैं।
नयन नयन मिचि लैंत बिछेपन मैंन की सैन मिलो है।
श्रीभट अटकि रहे जितके तित निज-निज लगन लगो हैं।।
-युगल शतक, ब्रजलीला सुख, पद संख्या-23

2. अति रूचि पावत शरद बिहार।
बीच युगलसो हैं मन मोहैं गोपी मंडलाकार।
षडज जमावें सरस बतावें सब मिलि गावें युगल बिहार।
श्रीभट् नवल नागरी नागर, ताता धेई करत उचार।।
-युगल शतक, ब्रजलीलासुख, पद- 24

साधक द्वारा अत्यधिक रास-रस में डूब जाने के कारण सर्वथा मानरहित एवं परम शुद्ध हो गया है। श्रीकृष्ण की आह्लादिनी शक्ति श्री राधा की मानलीला के संकेत अवश्य रासमण्डल के मध्य देखने को मिल जाते हैं। भगवान् श्रीकृष्ण के श्याम विग्रह में अपने गौरवर्ण का प्रतिबिम्ब देखते ही श्रीराधा किसी अन्य गोपी की कल्पना करके यह मान बैठती है[1]। रास के मध्य राधिका यह हठ मान भी अपने आप में अनुपम तथा ब्रज-साहित्य में प्रथम बार ही अंकित हुआ है। इसके साथ ही लीला से किया गया राध ा का यह मान रास लीला के रस-समूह का संवर्द्धन भी करता-सा प्रतीत होता है। प्रबंध के विगत अध्यायों में यह भी प्रमाणित किया जा चुका है कि राधा और कृष्ण के विग्रह भी लीला के कारण ही दो रूपों में प्रतिष्ठित हैं, फिर भला वे एक दूसरे से उदासीन कैसे हो सकते हैं।[2] वे तो परस्पर नित्य प्रेम के ही वशीभूत रहते हैं और राधे-राधे ही रटते हैं, यथा-

मोहन श्री राधे-राधे बैन बोलैं।
प्रीतिरीति रस वश नागरि हरि, लिये प्रेम के मोलैं।
हास विलास रास राधेसंग शील, आपनों तोलैं।
(जै) श्रीभट जदपि मदनमोहन तउ हारिहारि शिर डालै[2]।।

इस प्रकार यथार्थतः रासलीला में भी श्रीराधा कृष्ण परस्पर अपने नित्य प्रेम स्परूप को ही प्रकट करते हैं।

ब्रजभाषा में, रासलीला निरूपण की परम्परा में, श्रीभट्ट देवाचार्य के उपरान्त श्रीहरिव्यासदेव का नाम रखा जा सकता है। श्री हरिव्यास देवाचार्य जी, श्रीभट्ट जी के ही शिष्य थे। यद्यपि श्रीहरिव्यास देवाचार्य जी, श्रीभट्ट जी के ही शिष्य थे। यद्यपि श्रीहरिव्यासदेव जी के आविर्भावतिरोभावके समय का अभी निश्चिय काल अन्वेषण किया जा रहा है। तथापि इतना तो निस्सन्देह सिद्ध हो चुका है कि विक्रम सम्वत् 1450 से लेकर 1524 तक मध्यकाल में श्रीहरिव्यासदेव विद्यमान थे....[3]। श्रीव्रजबल्लभशरण वेदान्ताचार्य पंचतीर्थ, वृन्दावन ने अपनी पुनः शोध के आधार पर श्रीहरिव्यास देवाचार्य का स्थिति काल 1450 से 1555 तक स्वीकार किया[1] है। उनकी जांच के

१. रसिकनी मान कियो रसरास।
एक समै पिय तन में अपनों निज प्रतिबिम्ब प्रकाश।
यह सम्भ्रम उपजायो उनमें पर तिरिया कोउ पास।
जै श्री भट्ट हठ हरि सों करि रहि नागर निपट उदास।।
-युगलशतक- ब्रजलीलासुख, पद-26

2.युगलशतक-सहज-सुख, पद सं.-68।

3. युगलशतक की भूमिका-श्रीब्रजवल्लभशरण वेदान्ताचार्यख पृ0 8।

अनुसार, यही समय, सर्वथा ठीक प्रतीत होता है। युगल शतक के बाद ब्रजभाषा में श्रीहरिव्यासदेवाचर्य कृत-महावाणी का नाम आता है। श्रीभट्ट के युगल शतक की भांति श्रीहरिव्यासदेव कृत महावाणी में भी पाँच सुख (पाँच अध्याय या प्रसंग) हैं। इनमें से उत्साह-सुख में रासलीला का निरूपण किया गया है। जो पाँच सुख महावाणी में हैं, उनके नाम इस प्रकार हैं, यथा-1.सेवासुख, 2. उत्साह सुख, 3. सुरत सुख, 4. सहजमुख, 5. सिद्धान्त सुख।

महावाणी के उत्साह-सुख के अन्तर्गत जो प्रसांग दिखाई देते हैं, उनमें बसंत विहार, होली, बसंत रास, निकुंज बिहार, डोल (झूला), फूल मण्डनी (फूलश्रृंगार) चन्दनश्रृंगार, जलबिहार, रथारोहण, वर्षाऋतु बिहार, पहलीतीज, हिंडोरा, लूहरि, पवित्रा राखी, बधाई, पीछलीतीज, प्रियाजू की बधाई, रसदान, विजयादशमी, रासलीला, व्याह तथा दिवारी मुख्य हैं। इन सभी प्रसंगों में रासलीला के अन्तर्गत बसंतरास, जलबिहार तथा रासलीला-नृत्य को ही लिया जा सकता है। रासोत्सव का वर्णन इसी उत्साह सुख में पृथकतः किया गया है।

श्रीमद्भागवत की भाँति श्री हरिव्यासदेवाचार्य जी ने भी अपने महावाणी नामक ग्रंथ में श्रीकृष्ण की शरद्-रासलीला की प्रतिष्ठा की है। रासलीला महोत्सव के अन्तर्गत युग्मरासनृत्य तथा मण्डल रास-नृत्य-दोनों को ही गरिमापूर्ण स्थान प्राप्त है। संगीत की विविध लयों, तानों, गतियों तथा बंधों के साथ श्रीराधा-कृष्ण का रासलीला नृत्य (युग्म रासनृत्य) जहाँ एक ओर प्रकृति को सरस करने में सर्व समर्थ है, वहीं दूसरी ओर रसिकों के हृदय में परमानन्द की अनुभूति के लिए नित्य सक्षम है। इस रासलीला-नृत्य में प्रतिक्षण श्रीराधा-कृष्ण-युगल नवीन-नवीन गतियों की सृष्टि करते हुए, अयेक विचित्र-विचित्र बन्धों की रचना में संलग्न होकर, विविध प्रकार के अलौकिक हस्तकों में अपने नृत्य को आबद्ध करते जाते[1] हैं। इन हस्तकों से नृत्य में जो गति तथा रमणीयता उपस्थित होती है, रसिक-जन बार-बार,

---

१. युगल शतक की भूमिका- श्रीब्रजवल्लभशरण वेदान्ताचार्य, पृ0-13।

उस पर अपना सर्वस्व न्यौछावर करते हुए दिखायी देते हैं।

श्रीहरिव्यासदेवाचार्य जी ने लिखा है कि ब्रज की शरद-कालिक रात्रि में, ब्रजांगनाओं के अगणित यूथों के सहित श्रीराधा-कृष्ण युगल अपने रासलीला नृत्य में, अत्यन्त हर्ष के साथ, परममाधुर्य से युक्त एवं सुन्दर गतियों को उत्पन्न करते हुए, समस्त रसिक-गोपी-जनों को प्रमुदित कर देते हैं। रासलीला में सम्मिलित उन गोपियों में कोई तो वाद्य-वादन करती हे, कोई सामूहिक स्वरों में गीतगायन करती हैं, कोई समस्त जगत की नृत्य कला के उत्कर्ष को प्रदर्शित करती है और कोई नृत्य रत होते हुए भी अपने हाव-भाव-कटाक्षों से कोटि-कोटि कंदर्थों को तिरस्कृत करते हुए रासलीला की अलौकिकता का प्रतिपादन करती है। इन सब ब्रजांगनाओं के मध्य श्रीराधा भी अपनी नृत्य-गति को इस प्रकार की गति में प्रस्तुत करती हैं, जो अत्यन्त अद्‌भुत तथा लौकिकता से परे हैं। प्रिया जी की इस गति लाघवता को देखकर स्वयं श्रीकृष्ण भी आश्चर्यचकित होकर तृणं तोड़ने लगते[1] हैं। श्री हरिव्यास देवाचार्य द्वारा वर्णित राधा-कृष्ण-युगल का यह रास अनेक ब्रजदेवियों के साथ, जहाँ एक ओर युग्मरासलीला की झांकी को

---

1. विविध भेद गति जाति सहित सकल कला सिरमौर।
   अतिरस बरसत सरद की सरवरि जुगलकिशोर।
   सरद सर्वरी अति रस बरसत नवल जुगल मंडल में।
   विविध भेद गति तान मान बंधान गान कल उघटत ताथंडल में।
   रीझि भीजि वन वेलि डहडही रही दृष्टि दे आखंडल में।
   श्रीहरिप्रिया निरखि नैनन सुख वारि प्रान पलपल में उमगी उरमंल में।
   उघटत ता धिता धिता तत तं तं त त कीन।
   नागरिनागर रास में निर्तत नव गति लीन।।
   नागरी नागर निर्तत रास में नई नई गति लीनै।
   हस्तक भेद विभेद-परायन पायन वरजति बीनै।।
   उघटत ता धिता धिता धै त त तं तं त त कीनै।
   श्री हरिप्रिया निरखि तन मन धन न्यौछावर करि दीनै।।
   
   -महावाणी, उत्साह-सुख पद संख्या 126,127।

2. खेलत लालन लालना रासे, ललित मृदुल गति मिलवत हासे।
   श्री वृन्दावन सरद जामिनी, संग लिये बहु वृंद कामिनी।।
   बाजा अन-अन भांतिन वजवति, एक सुरनिकल सुंदरि सजवति।
   गावति सुघर संगीत सुढारा, सुनि रीझत दोऊ सुकुंवारा।
   नृत्य कला जितनी जग माहीं, कोउ न वची रंचक इनि माहीं।।
   भृकुटि विलासित विहंसि बढ़ावै, कोटि-कोटि कंदर्प तजावै।
   रीझि-रीझि प्रीतम तन तोरै, यह छवि सदा बसौ उर मोरैं।।
   इतनी मानि बिनती लीजै, श्रीहरिप्रिया चरन-रज दीजै।।
   
   -महावाणी-उत्साह-सुख, पद सं. -129

प्रस्तुत करता है, वहीं दूसरी ओर रासलीला के विराट रूप की भी कल्पना को साकार कर देता है। सूक्ष्म निरीक्षण से यह भी ज्ञात होता है कि यह रासलीला नृत्य तक ही सीमित न था। इसमें नृत्य के साथ गीत-गायन, हाव-भाव-प्रदर्शन, वाद्य-वादन तथा अन्य रसमयी चेष्टाऍं भी दृष्टिगोचर होती हैं।

युग्म रासलीला के अतिरिक्त श्री हरिव्यासदेव ने मण्डल-रासलीला की प्रतिष्ठा, पूर्व परपरानुसार, अपने ग्रन्थ में भी है। यह रासमण्डल वृन्दावन स्थित नव निकुंज के प्रांगण में ही सुनियोजित होता है। इसमें भी, संगीतान्तर्गत, नृत्य, गान, वादन तथा विविध हस्तक (नृत्य मुद्राएं) परिलक्षित है। हाव-भाव-कदाक्ष के साथ परम माधुर्य से युक्त सात्विकों के उदय तथा रतिपरक अलौकिक चेष्टाएँ भी यहाँ दृष्टिगोचर होती हैं। नृत्य-गान-वादन आदि की समस्त क्रियाऍं भी इस मण्डल रासलीला में असाधारण रूप में ही दिखायी देती हैं[1]। यह मण्डल रास भी, सच्चिानन्द-घन रूप वृन्दावन के मध्य, शरदऋतु की परम उत्कर्षयुक्त चन्द्रिका की श्वेतिमा में तथा शीतल-मंद-सुगन्द से युक्त पवन के रसमय प्रवाह में ही संपन्न होती है। श्रीकृष्ण की कुंजरासलीला का अनेक विधि क्रीड़ाओं के उल्लेख भी श्रीहरिव्यासदेव ने किये है। जल विहार लीला का वर्णन भी अत्यन्त सरसतापूर्वक महावाणी में अभिव्यक्त किया गया[2] है। इसके अतिरिक्त वसंतरास का निरूपण भी अत्यन्त प्रभावपूर्ण ढंग से दृष्टिगोचर होता है। यह वर्णन होली के समय पर का ही दृश्य उपस्थित करता है।

वसंत रास के निरूपण में भी रासमण्डल निर्मित होता है गोपियों द्वारा रचित इस मण्डल में भी श्री राधा-कृष्ण-युगल अपना अलौकिक रासलीला-नृत्य प्रस्तुत करते हैं। इसमें नृत्य-गान-वादन एवं स्वर-संधान के साथ-साथ समस्त ब्रजदेवियाँ मण्डल स्थित होकर रंग-गुलाल से होली भी खेलती जाती हैं, यथा-

---

१. रास मण्डल मधि निर्तत मोहनी मोहन, वृन्दावन नवनिकुंज सुन्दर आनन्दघन।
लागदाट उरपतिरप उघटत सांगीत सुलप राग रंग तान मान गान सुवरसप्त-सुरन।
-महावाणी, उत्साहसुख, पद-132।

2. जल माहिं मरे रस डोलहीं।
मानहुँ सुधा-सरोवर माहीं मत मराल किलोलहीं।
-महावाणी, उत्साहसुख, पद-67।

**चहुं ओरी गोरीन से मंडल मध्य सुधंग।**
**देखो नटवर नृत्य हरि करत मोहिनी संग॥**
**देखो नटवर नृत्य करत मनमोहन थेई हँरि हँरि थेई थेई-मुख बोलें।**
**ज्यों-ज्यों प्रिया पुलकारत त्यों त्यों बाढत पुलक अतोले।**
**होरी रस ओरी सब गोरी जोरी चहुँ दिसि डोलैं।**
**गावत गीत बजावत बाजे साजे सुरन अमोलै।**
**नागिदा तागिदा मनहरन मटक मुख चटकीली चस लोलै।**
**रीझि प्रिया पोंछत श्रमबनकन लै निज नीलनिचोलैं।**
**श्रीहरिप्रिया निरखत इक टक दिये कहते हो हेरी हीलै॥**[१]

## बल्लभ सम्प्रदाय और रासलीला-

अष्टछाप के अन्तर्गत परिगणित महाप्रभु बल्लभाचार्य के शिष्यों में श्री सूरदास, श्री कुम्भनदास, श्री कृष्णदास तथा श्री परमानन्ददास सहित चार महाकवि हैं और गोस्वामी श्री विट्ठलनाथ जी के चार शिष्यों में छीतस्वामी, गोविन्द स्वामी, चतुर्भुजदास तथा नन्ददास के नाम उल्लेखनीय हैं। श्री सूरदास (आयु 105 वर्ष) सं. 1535 से 1640 वि., श्री कुम्भनदास (आयु 115 वर्ष) सं. 1525 से 1640 वि., श्री कृष्णदास (आयु 83 वर्ष) सं. 1555 से 1636 वि., श्री परमानन्ददास (आयु 91 वर्ष) सं. 1550 से 1649 वि., श्री छीतस्वामी (आयु 70 वर्ष) सं. 1572 से 1642 वि., श्री गोविन्द स्वामी (आयु 80 वर्ष) सं. 1562 से 1642 वि., श्री चतुर्भुजदास (आयु 55 वर्ष) सं. 1587 से 1642 वि., श्री नन्ददास (आयु 50 वर्ष) सं. 1590 से 1640 वि.। रासलीला के प्रचार एवं प्रसाद की दृष्टि से गोस्वामी विट्ठलनाथ जी ने भी अपने स्थिति-काल में महान प्रयास किये थे।

गोस्वामी विट्ठलनाथ जी ने सम्वत् 1616 से कुछ समय पूर्व अडैल में रासलीला का पहला आयोजन किया था। अडैल में भले ही रासलीला का यह प्रथम आयोजन हुआ हो, किन्तु वृन्दावन में इससे पूर्व रासलीला के आयोजन विधिवत् होने लगे थे। गोस्वामी विट्ठलनाथ के गोकुल में स्थायी निवास करने पर रासलीला के विकास एवं प्रदर्शन में एक विशेष वेग आया था। गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के सुपुत्र गोस्वामी गोकुलनाथ

---

१. नचत नवल नागर रहसि रासरगे।
सुभगवन पुलिनथल कल्पतरूतल विमल मंजु मंडल कमलदल अभंगे।
-महावाणी, सेवासुख, पद-72।

जी ने भी अनुकरणात्मक रासलीला के प्रसार में अभूतपूर्व योगदान किया था। परासोली के चन्द्रसरोवर पर जिस रासलीला का आयोजन गोस्वामी गोकुलनाथ जी ने किया था। रासलीला के परम माधुर्य से युक्त अनुकरणात्मक प्रदर्शन एवं प्रसार की परम्परा का जो प्रभाव अष्टछाप के रसिक भक्तों पर पड़ा उसी के फलस्वरूप अष्टसखाओं ने भी रासलीला गायन के माध्यम से इस परम्परा को निरन्तर आगे बढाया है।

**श्री सूरदास-अष्टछाप**- शिरोमणी एवं श्री राधा-कृष्ण-युगल की ब्रजलीलाओं के परम मधुर गायक श्री सूरदास जी महाप्रभु बल्लभचार्य जी के शिष्य थे। इनका जन्म वैशाख शुक्ल 5 सं. 1535 वि. 'सिही' नामक ग्राम में हुआ था। गोस्वामी हरिराय की भावप्रकाशवाली चौरासी वैष्णवों की वार्ता में सूरदास की जन्मभूमि के रूप में ''सीही'' ग्राम का ही उल्लेख किया गया है। चौरासी वैष्णवों की वार्ता में सीही ग्राम की स्थिति को स्पष्टत: लिखा गया है, यथा-'दिल्ली के पास चार कोस उरे में एक सीही ग्राम है, जहाँ परीक्षित के बेटा जनमेजय ने सर्प यज्ञ किया है।[1]

गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के छठवें पुत्र श्रीयदुनाथ जी के अनुसार श्री सूरदास जी सारस्वत ब्राह्मण थे।[2] महाप्रभु बल्लभाचार्य ने इन्हें संभवत: सम्वत् 1567 वि. में वैष्णवी-दीक्षा से विभूषित किया था। जन्म से ही नेत्र विहीन होने के कारण जहाँ एक ओर घरवाले इनसे उदासीन रहते थे, वहीं दूसरी ओर ये भी घर की ओर से पर विरक्त होकर, घर से बाहर एवं ग्राम के समीप एक सरोवर पर रहने लगे थे। ''सूरदास की अवस्था इस समय 18 वर्ष की थी। भगवान के भजन में विघ्न होते देखकर सूर ने उस स्थान को छोड़ दिया। वे मथुरा आये, उनका मन वहाँ नहीं लगा। उनहोंने गऊघाट पर रहने का विचार किया। गऊघाट जाने के कुछ दिन पूर्व वे रेणुकाक्षेत्र में भी रहे, रेणुका (रुनकता) में उन्होंने संतों और महात्माओं का सत्संग मिला, पर उस पवित्र स्थान में उन्होंने एकान्त का अभाव बहुत खटकता था। रुनुकता से तीन मील दूर पश्चिम की ओर यमुना तट पर गऊघाट में जाकर वे काव्य और संगीतशास्त्र का अभ्यास करने लगे।[3]'' महाप्रभु के शिष्य होने के बाद, श्री सूरदास जी, उन्हीं के साथ गोवर्धन चले आये।

---

१. चौरासी वैष्णवन की वार्ता के अन्तर्गत अष्टसखान की वार्ता, पृ.2।

2. ''ततो लकंपुरैऽसमागत:। तत्राऽऽवास:कृत:। ततो ब्रजसमागमने सारस्वत सूरदासोऽनुगृहीत.।''

-बल्लभदिग्विजय, पृ.50।

3. कल्याण भक्तचरितांक (गीता प्रेस) पृ. 349

गोवर्धन के समीप ही परासौली नामक वह ग्राम स्थित है, जहाँ पर गोस्वामी श्री गोकुल नाथ जी ने भगवान श्री राधाकृष्ण युगल की रासलीला का आयोजन किया था। परासौली को आज भी, इतिहास में, रासस्थली होने का गौरव प्राप्त है। महात्मा सूरदास जी ने जीवन पर्यन्त यहीं रहकर, जहाँ एक ओर श्रीराधाकृष्ण की प्रेमभक्ति एवं उपासना विषयक पदों की रचना की थी, वहीं दूसरी ओर रासलीला आदि विविध प्रकार की लीलाओं का भी गायन किया था।

नागरी प्रचारिणी सभा, काशी द्वारा प्रकाशित एवं पं. नन्ददुलारे वाजपेयी द्वारा सम्पादित-सूरसागर के प्रथम खण्ड में, रासलीला विषयक जो पद संग्रहीत हैं, उन्हें देखने से ज्ञात होता है कि श्री सूरदास जी पर श्रीमद्भागवत् की विषय वर्णन प्रक्रिया का पूर्णतः प्रभाव पड़ा था। इस पारम्परिक प्रभाव के अनुसार उन्होंने रासपंचाध्यायी का तो सांगोपांग निरूपण किया ही, साथ ही अपनी सत्कल्पना के विविध रंगों से रंगकर उसे प्रियदर्शी एवं हृदयग्राही भी बना दिया। महाकवि सूर के अनुसार, शरद ऋतु चन्द्रिका युक्त यामिनी को देखकर, श्री कृष्ण ने यमुना तट पर, रासलीला की इच्छा करते हुए, समस्त ब्रजांगनाओं को परमानन्दित करने के लिये गोपियों के विविध नामों के उच्चारण सहित अपनी वंशी की असाधारण एवं सुमधुर ध्वनि का प्रसार किया।[1]

वृन्दावन के मध्य यमुना तट पर विराजमान श्यामसुन्दर की मुरलीवादन को सुनकर गोपियाँ वैसे ही चल पडीं, जैसे सरिता, सिंधु मिलने के लिये गतिमान होती है। ब्रज देवियों के पहुँचने पर, श्रीकृष्ण ने उनके प्रेम की परीक्षा हेतु वेद-विधियों तथा मर्यादाओं का उपदेश दिया, किन्तु गोपियाँ तो अपने पतियों के पति, त्रिभुवन-पति श्री श्याम सुन्दर के लिए समस्त-विविध निषेधों से परे हो गई थी। अतः वे दुखी हो गयीं। श्याम के निष्ठुर वचनों ने उन्हें निराश भी किया, आकुल भी और सर्व प्रकार से श्री हरि के प्रति उनकी अनन्यता को सुदृढ़ भी कर दिया। वंशी की जिस मधुर ध्वनी ने, जिन गोपिकाओं को नाम ले-लेकर रासलीला के लिए आमंत्रित किया हो, वे भला वापस कैसे लौट जातीं।[१] श्रीकृष्ण ने उनकी विनय को भी देखा

---

१. सरद निसि देखि हरि हरण पायौ।
विपिन वृंदा रमन सुभग फूले सुमन-

सूरसागर (ना.प्र.स. काशी), खण्ड-१, पृ ६०२

और अनन्यनिष्ठा को। समस्त धर्मों का परित्याग करने वाली उन गोपियों के प्रति भला वे कब तक कपट-आचरण कर सकते थे।[१] अतः वे द्रवित हुए, दृढ हुए और तब उन्होंने उन गोपियों को समस्त भुवनों की दैवियों में सवोच्च रूप में ही प्रतिष्ठित किया था।

श्री श्याम सुन्दर ने, निराश गोपिकाओं का समादर करते हुए उन्हें सर्व प्रकार से प्रफुल्लित कर, यमुना-तट स्थित वंशीवट पर चलने हेतु प्रेरित किया। श्री हरि के साथ समस्त ब्रजदेवियाँ जब वंशीवट पर पहुँच गयीं तब श्याम सुन्दर ने गोपियों के रासमण्डल को सुनियोजित करके रासोत्सव को प्रारम्भ किया।[२] ये सभी गोपांगनायें रूप-गुण में श्रीराधिका जी के समान, संख्या में साठ हजार होकर रासोत्सव में सम्मिलित थी।[३] श्रीश्याम सुन्दर जी प्रत्येक गोपी के पास मण्डल में विराज रहे थे। इस प्रकार रासेश्वर श्रीकृष्ण ने इस दिव्य रासलीला के रूप में अपनी दिव्यतिदिव्य लीला को प्रकट कर दिया।[४]

इस रासलीला में, श्री सूरदास जी के अनुसार, वे प्रधान यूथेश्वरियाँ भी सम्मिलित थीं, जिन्हें श्रीयुगल की मुख्य एवं अन्तरंग अष्टसखियों के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त है। ये अष्ट सखियाँ ही साठ सहस्त्र गोपियों की अधिपति होकर रासमण्डल में, श्री राधाकृष्ण-युगल के चतुर्दिक आठो दिशाओं में सुसज्जित होकर, सुशोभित हो रही थीं।[५] रासमण्डल में जहाँ

---

१. कैसे हमकौं ब्रजहि पठावत।
मन तो रह्यौ चरन लपटान्यौ, जो इतनी यत देह चलावत।।
-सूरसागर (ना.प्र.स. काशी), पद-१०२३, १६३१

२. बिनती सुनी स्याम सुजान।
अतिहिं मुख उपमान कीन्हों, दृढ़ न इनतैं आन।।
-सूरसागर (ना.प्र.स. काशी), पृ ६१४

३. अंचल चंचल स्याम गह्यौ।
लै गए सुभग पुलिन जमुना कैं अंग-अंग भेष लह्यौ।।
-सूरसागर (ना.प्र.स. काशी), पद-१०३८, १६५६

४. "..षट-दस सहस घोष-सुकुमारी, षट-दस-सहस गुपाल।
काहू सौं कछु अन्तर नाहीं, करत परस्पर ख्याल.....।।
-सूरसागर (ना.प्र.स. काशी),पद-१०४७, १६६५

५. जहाँ स्याम धन रास उपायौ, कुंकम-जल सुख-वृष्टि रमायौ।
धरनी-रज कपूर मय मारी, विविध-सुमन-छवि न्यारी-न्यारी।।
-सूरसागर (ना.प्र.स. काशी),पद-१०३९, १६५७

एक ओर श्री श्यामसुन्दर नृत्य के विभिन्न रहस्यों का उद्घाटन कर रहे थे, वहीं दूसरी ओर अनेक प्रकार के वाद्यों की सुमधुर ध्वनि के मध्य, समस्त रूप एवं गुणों की भण्डार-वे सखियाँ एवं गोपियाँ श्री प्रिया जी सहित, प्रियतम कृष्ण का अनुसरण करते हुए, गायन, वादन तथा मधुरतम चेष्टाओं के प्रदर्शन में रत थीं।[१] इस प्रकार रासलीला का यह महोत्सव अभूतपूर्व होने के साथ-साथ रमणीय भी था।

श्री सूरदास जी ने, इस रास मण्डल में श्री राधा की चेष्टाओं का भी अत्यन्त सरस निरूपण किया है। श्री प्रिया जी, अत्यन्त प्रफुल्लित होकर, अपने साथ ही उनको परमानंदित करते हुए, बेसुध होकर गिर भी पड़ती हैं। जब उन्हें चेत होता है, तो वे तुरन्त श्यामसुन्दर के कण्ठ में अपनी कोमल भुजाओं को डालकर झूल जाती हैं। वे श्रीहरि को अधरमृत भी देती हैं और सामने होकर, रासलीला में, उनके मुख-सौंदर्य का पान भी करती हैं।[२]

## पुष्टिमार्ग में ब्रजलीला-

गो॰ श्रीहरिरायचरण ने भी अपनी 'नित्यलीला' में मंगला, श्रंगार, ग्वाल, राजभोग, उत्थापन-भोग सन्ध्या-आरती और शयन इन आठों झाँकियों को बाल-लीला के अनुसार श्रीकृष्ण की दिनचर्या के रूप में प्रस्तुत कर व्रजलीला को साकार किया है। प्रातःकाल होते ही माता वात्सल्य से अपने पुत्र को जगाती है, गोपियाँ अपने घरों में मधु-मेवा-पकवान, मिठाई, दही-दूध आदि लाती हैं, प्रभु आरोगते हैं : पश्चात् स्नान, उबटनादि प्रक्रिया के बाद श्याम-सुन्दर का विविध वस्त्राभूषणों से श्रृंगार किया जाता है। खिरक में श्यामसुन्दर गायों की सेवा करते हैं। दही-दूध खाते हैं,

---

१. रास-मण्डल मध्य स्याम राधा।
मनौ धन बीच दामिनी कौंधति सुभग, एक है रूप, नहिं बाधा।।
--सूरसागर प्रथम खण्ड, पद **१०५२,१३७०।**

**२अ.** उघटत स्याम, नृत्यति नारि।
धरे अधर उपंग उपजैं, लेत हैं गिरिधारि।।
--सूरसागर प्रथम खण्ड, पद **१०५९,१६७७।**

**२ब.** कबहुँ पिय हरषि हिरदै लगावै।
कबहुँ लै लै तान नागरी सुघर अति, सुघर नन्द-सुवन कौ मन।।
--सूरसागर प्रथम खण्ड, पद **१०६१,१६७९।**

गोपियों के घरों में घुसकर माखन चुरा लाते हैं और उनकी मटकियाँ छोड़कर ग्वालवालों को खिलाते हैं। बन में गौए चराने हेतु गोप बालकों के साथ जाते हैं। भोजन के समय मैया छाक भेजती है। कभी-कभी नन्दनंदन दोनों भ्राता बैठकर एक साथ विविध व्यंजनों का स्वाद लेते हैं। श्री सूरदास ने ग्रीष्म-ऋतु के उत्ताप का सजीव चित्र इस प्रकार खींचा है[१] :-

**सूर आयो सीस पर छाया आई पांईन तर,**
**पंथी सब झुकि रहे देखि छांह गहरी।**
**ब्रज के सुकुमार लोग दै-दै किवार सोए,**
**पसु-पंछी जीव जन्तु चिरियां चुप रहरी॥**
**धंधी जन धंध छांडि रहे री धूपन के लिये,**
**उपबन की ब्यार तामें पौढ़े पिय प्यारी।**
**'सूर' अलबेलो चली काहे कों डराति जिय,**
**माह की मधयरात जैसे जेठ की दुपहरी॥**

इस प्रकार ग्रीष्मावकाश व्यतीत करने पर अर्जुन सखा द्वारा तीसरे प्रहर शंखनाद होना और प्रभु का जगना, सायंकाल समय गायों के झुण्डों के साथ वन से नन्दगृह को लौटना, दिवस भरके भारी विरह के पश्चात संध्या समय गृह पधारते हुए नन्दकिशोर को अपने संध्या समय गृह पधारते हुए नन्नकिशोर को अपने घरों के झरोखों, गवाक्षों एवं अट्टालिकाओं से ब्रजगोपियों के द्वाराा अनिमेष दृष्टि से निहारना, बालक को कहीं नजर न लगे, शयन भोग द्वारा भोजन कराना, दूध पिलाना और मीठी-मीठी लोरियाँ व कहानी सुनाकर नन्दलाल को सुलाना आदि विविध दैनिक गतिविधियाँ का अत्यन्त मनोरम निरूपण है।

श्रीकृष्ण ने ११ वर्ष एवं ५२ दिवस पर्यन्त जो ब्रज में लीलाए की हैं, उनमें माखनचोरी, मुख में ब्रह्माण्डदर्शन, ऊखल-बन्धन, चीरहरण, गोवर्द्धनधारण, दानलीला- रासलीला आदि मुख्य हैं।

सूर, परमानन्ददास, कुंभनदास, कृष्णदास, गोविंदस्वामी, चतुर्भुजदास, छीतस्वामी, और नन्ददास इन आठों महाकवियों ने श्रीमद्बल्लभाचार्य जी एवं उनके प्रतापी सुपुत्र गोस्वामी श्री विट्ठलनाथ जी की कृा प्राप्तकर भगवान् श्रीनाथजी की आठों समय की कीर्तन-सेवा सम्हाली थी और ब्रजलीलाओं की अनुभूति एवं साक्षात्कार द्वारा अपनी भाव-पूरित काव्यवाणी में उन्हें अवतरित किया था।

---

१. सूरसागर (ना.प्र.स. काशी), खण्ड-१, पद-१७०३

सूरदास की रचनाएँ श्रीमद्भागवतीय लीलाओं से ही अनुप्राणित हैं। साहित्य जगत् में इनके सहस्त्रावधि पद 'सूरसागर' कहे जाते हैं। 'परमानन्द सागर' तथा अन्य कवियों के पदों में भी ब्रजलीला का वर्णन है। नन्ददासकृत 'पंच-मंजरी' तो अद्वितीय ग्रन्थ है। भ्रमरगीत भी साहित्य में शिरोमणि है और 'रास पंचाध्यायी' तो साहित्य का हृदय ही गोपियों को भगवान् के द्वारा कटुवचन व प्रश्नोत्तर, भगवान् का धर्मोपदेश, गोपियों का दृढ़ रास, शरद की निर्मल यामिनी में लघुरास, गोपियों एवं राधा सहचरी का गर्व, भगवान् का अन्तर्धान् होना, उत्कट विलाप, गोपीगीत द्वारा गोपियों का तीव्र विरह; पुनः प्रभु का आविर्भाव और महारास, यह लोकोत्तर लीला जो श्रीमद्भागवत के दशमस्कंध में वर्णित है, उसी का स्वारस्य नन्ददासजी ने प्रस्फुटित कर दिया है।

अन्य व्रजकवियों में ढीमर जाति के महाप्रसिद्ध भक्त हुए हैं, जिन्होंने निम्न पद में गोवर्द्धन लीला एवं अन्नकूट का सरस वर्णन किया है-

**हमारो देव गोवर्धन पर्वत गोधन जहाँ सुखारो।**
**मधवा को बलि भाग न दीजै सुनियै मतो हमारो॥**
**बड़रे बैठ विचार मतो कर पर्वत को बलि दीजै।**
**नन्दराय को कुंवर लाड़िलो कान्ह कहे सोई कीजै॥**

प्रस्तुत पद में 7 वर्षीय बालक द्वारा नन्द, यशोदा का 'इन्द्रयज्ञ' छुड़ाकर गिरि पूजा कराना, सहस्त्रभुजा-धर भोग-आरोगना, इन्द्र के कोप से गिरि को उठाकर सारे व्रज की गाय, गोप-गोपी व्रजजनों की रक्षा करना और अन्त में इन्द्र द्वारा क्षमा-याचना व सुरभी गौ एवं ऐरावत अर्पण करना आदि सरस वर्णन उपलब्ध है।

इसी प्रकार बड़ी गोवर्धन लीला में 'अपने-अपने टोल कहत' और 'गोद बंठ गोपाल कहत' में भी सूर सरखे महानुभावों ने तत्कालीन गोवर्द्धनलीला का हूबहू निरूपण किया है।

श्रीहरिरायचरण ने ब्रजराज एवं ब्रजगोपियों द्वारा सांकरीखोर दानघाटी में संवाद, दान के हेतु झकझोरी आदि का रससिक्त वर्णन 'गोवर्धन की सिखर तें' एवं 'गढ़ ते ग्वालिन ऊतरी हो' इन दोनों दानलीलाओं में किया है, जिसकी एक-एक पंक्ति सुनते ही दानलीला का वह दृश्य आँखों के सामने उपस्थित होकर जीव को लीलारसाब्धि में डुबो देता है। दानलीला

की एक-एक पंक्ति से वह भाव स्फुट होता है, जिन्हें श्रवण कर हृदय पसीज जाता है और आँखें बरबस बरसने लगती हैं। यही इन महाकवियों की काव्य वाणी में छिपी हुई तासीज है। यह ब्रजवाणी आज भी इस ब्रज के कोने-कोने में, कुण्ड, वृक्ष, लता, गुल्म, वनौषधि, पुष्प फल-मूल श्रीयमुनाजी, गिरिराजजी की उपत्यका, ब्रज की गैल, सभी स्थानों में गूंजती हुई हमें ब्रजेन्द्रनन्दन की उन लीलाओं की याद दिला रही हैं।

पुष्टिमार्ग में ब्रजलीला-गो. माधवराय जी

## ललित सम्प्रदाय और रासलीला-

ललित संप्रदाय में (सृष्टिलीला और वास्तवी (नित्यलीला) का मूल कारण श्रीराधा की मान्य हैं। वे आदि, स्वतंत्र तथा पराशक्ति कही गयी हैं[1] तथा जीवेशादि की प्रकल्पिका भी बेही हैं।[2] वे ही माया, ब्रह्म और स्वयं भगवान् की कर्त्री तथा अधिष्ठात्री हैं :[3] श्रीवंशीअलि के मत में श्रुतियों द्वारा प्रतिपादित सच्चिदानंद परब्रह्म स्वरूपिणी श्री राधा ही हैं, जिसके अभाव में जड़ सत्य निरानन्द रूप में शेष रह जाता है।[4] श्रीदशश्लोकीमें कहा गया है कि ''नान्या गतिः कृष्णपदारविन्दात्'' तथा श्री हरिव्यासदेव जी द्वारा उसी की टीका करते हुए कहा गया है कि 'तस्मात् कृष्ण एव परो देवः, तं ध्यायेत्, तं रसेत् तं भजेत्, तं यजेत्, ओं तत्सदिति' (श्री दशश्लोकी टीका-श्रीहरिव्यासदेव पृ॰36)। श्रीवंशीअलि जी का मत इससे भिन्न है। श्रीवल्लभाचार्यजी ने 'परब्रह्म तु कृष्णोहि सच्चिदानन्दकं बृहत्' कहकर श्रीकृष्ण की ही सर्वोपरि प्रतिष्ठा की है। श्रीचैतन्यमत में भी 'आराध्यो भगवान् ब्रजेशतनयोस्तद्धाम वृन्दावन.....श्री चैतन्यमहाप्रभोर्मतमिदं तत्रादरो नः परः।।' कहकर श्रीकृष्ण को ही परात्पर रूप में स्वीकृत किया है। श्री बंशीअलि 'कृष्णात्परं किमपि तत्त्वमहं न जाने' की उक्ति को स्वीकार न करते हुए कहते हैं- ''वह राधा जो कृष्णादि अखिल भक्तों की ईश्वरी परात्पररूपा हैं, श्री ललिता के चरण कमलों के आश्रय से सुलभ हो सकती हैं-

**कृष्णाद्यखिल भक्तानां ईश्वरी या परात्परा।**
**ललिता चरणाम्भोजसंश्रयात्सुलभा भवेत्।।[5]**

---

१. चिति शक्ति स्वतन्त्रा स्यादेका भिन्ना प्रकारतः।-श्रीराधासिद्धान्तः, श्लोक ६।
२. श्रीराधासिद्धान्तः-लेखक श्रीवंशीअलि, श्लोक १२।
३. वही श्लोक २ । ४. वही श्लोक १० । ५. वही श्लोक ७६ ।

आचार्य वंशीअलिजी का कथन है कि श्री राधा की तुलना किसी के साथ नहीं की जा सकती। श्रीकृष्ण के साथ भी उनकी तुलना का प्रश्न नहीं उठता। वे 'निरस्तसाम्य' हैं, अत: ऐसा विचार करना ही मोहमात्र है।[१] नंदतनय तो उनकी चरणरज से उत्पन्न हुए हैं- योनदसूनुस्तवपादपांशुज:, (श्रीराधास्तोत्र-ले॰ वंशीअलि श्लोक 15)। श्रीवंशीअलिजी के मत में श्रीराधा का ही दूसरा नाम ब्रह्म है जो सर्ववस्तुओं और प्राणिमात्र में अनुस्यूत है तथा सभी उसके आश्रित हैं-

**स्याद्ब्रह्मापरपर्याय: सर्वानुस्यूतरूपिणी।**
**स्वातंत्र्यमपि सैवास्ति तस्मात्सर्वस्तदाश्रित:।।**[२]

श्री राधातत्त्व की परात्परता को समझाने के लिए उनका वर्णन कथन है कि जैसे किसी अत्यन्त अल्पदृष्टि वाले व्यक्ति को यह कहकर कि 'देखो उस वृक्ष की शाखा के ऊपर चन्द्रमा दिखाई दे रहा है, संकेत से चन्द्रमा का बोध कराते हैं। उसी प्रकार 'श्रीकृष्ण के परे श्रीराधा हैं' ऐसा कहकर उन्हें बताया जाता है। वृक्ष की शाखा और चन्द्रमा की वस्तुत: कोई तुलना नहीं होती; ठीक उसी प्रकार कृष्ण और राधा की तुलना करना भी एक भ्रांति है; उन्हीं के शब्दों में-

**शाखोपरिष्ठा इह चन्द्रलेखा,**
**भवेद्यथोक्ति: परमल्पदृष्टे:।**
**इयं प्रबोधाय भवेत्तथोक्ति:,**
**कृष्णात्परा त्वं वृषभानुकन्ये।।**[३]

वे श्रीराधा सर्वानुस्यूतरूपा होकर भी सबसे परे स्थित हैं। भविष्योत्तर पुराण की साक्षी देते हुए श्रीराधा की परात्परता को श्री वंशीअलिजी ने श्रीनारायण के कथन के आधार पर सिद्ध किया है कि उन्होंने ब्रह्मा को सम्बोधित करते हुए कहा- ''हे ब्रह्मा! तुमसे पूर्व मैं था-'' इससे व्यंजित होता है कि सबसे पहले नहीं तुमसे पहले मेरी स्थिति थी। प्रश्न उपस्थित होता है कि 'तब सबसे पहिले कौन था?' इसके उत्तर में कहा गया है कि 'राधा' नामक एक और तत्त्व सबके आदि में था। वह सद् और असद् तथा कार्यकारण संघातसे भी परे है। उसने सृष्ट्यादि व्यापार को अस्वीकृत कर

---

१. निरस्त साम्येन च साम्य कल्पना त्वदीय रूपेण विमोहमात्रकम्।
एकात्त्वमेवासिमहत्तमान्तरे विमृग्यरूपा श्रुतिभिर्निबोधिता।।
-श्री राधा स्तोत्र- लेखक श्रीवंशीअलि, श्लोक 14।

2. श्रीराधासिद्धान्त:, श्लोक 8 ।, 3. श्रीराधास्तोत्र सं. 8 ।

दिया है और वह केवल नित्यधाम वृन्दावन में 'नित्यविहार' में संलग्न रहता है।'[1]

कुछ लोग श्रीराधा को श्रीकृष्ण की 'ह्लादिनी शक्ति' तथा उनकी आराधिका या दासी कहते हैं वंशीअलिजी के अनुसार वह शक्ति श्रीराधा का एक अंश भर है और वह आराधिका इसी नाम की एक अन्य गोपी है।[2]

श्रीवंशीअलिजी के अनुसार वही राधा आत्मा परमात्मा, मूलप्रकृति, योगमाया, सृष्टि की अधिष्ठात्री, चरण-रज से कोटि-कोटि विष्णु-शिवादि को जन्म देने वाली, भागवत में जन्माद्यस्य यतः' तथा 'ऋतेर्थमिति' आदि श्लोकों द्वारा प्रतिपादित तथा 'रसो वै सः' आदि श्रुतियों से संकेतित हैं। वह नित्य अपने सौंदर्य की महाराशि में आसक्त 'नित्यकिशोरी' हैं और उन्होंने वृषभानु के घर जनम लिया है।

श्री राधा ही ललित-संप्रदाय की उपास्यदेवी हैं। अतः इस सम्प्रदाय में उन्हीं को ब्रज तथा निभृत-निःकुंज लीलाओं पर सम्प्रदाय के आचार्यों और भक्त कवियों की दृष्टि केन्द्रित रही है। श्रीराधा की प्रकट व अप्रकट ब्रजलीला को क्रमशः 'ब्रजवन' और 'निःकुंज' लीलाओं के रूप में उन्हें उत्तरोत्तर श्रेष्ठ मानकर उपासना की गयी है।

श्रीराधा परम करुणामयी है। वे केवल ध्यानमात्र से ही अपने भक्तों को सामीप्य प्रदान करती हैं। स्वयं ज्योति-स्वरूपा निराकार होते हुए भी भक्तिपराधीन होकर वे साकार रूप धारण करती हैं। उनके लीला-विस्तार का प्रयोजन भक्तों के प्रसादन और अपने चरणों में उनके मन को संलग्न करना है।[3] वे नित्य भक्तों के आधीन हैं। इसीलिए लीला करने के लिए तत्पर होती हैं और अपने परम भक्त श्रीकृष्ण के साथ समताभाव से रमण करती हैं-

**नित्यं भक्त पराधीना तेन राधा विहारिणी।**
**साम्यं भजति भक्तेन रसे कृष्णेन लीलया।।**[४]

---

१. श्रीराधातत्त्वप्रकाशः-लेखक श्रीवंशीअलि, पृ0 18 ह0लि0प्रति लेखक संग्रह में।

2. वही पृ0 12,13 ।

3. श्रीराधासिद्धान्त - लेखक वंशीअलि, श्लोक 23 ।

4. वहीं, श्लोक 21 ।

श्री वृषभानु के घर जन्म लेकर श्रीराधा ने भक्तों पर निश्चय ही कृपा की है; क्योंकि दास्य वात्सल्य-माधुर्यादि की विविधा लीलाओं के आविर्भाव से भक्त विविध भावों की भक्ति के अधिकारी बनते हैं-

**वृषभानु गृहे जन्म कृपया साधका ननु।**
**लीलाविर्भावतस्तेवै नाना भावाधिकारिणः॥**[१]

**लीलाविधायक-तत्त्व-**

'निकुंज-विहार' के उपासक नित्यविहार के लीला विधायक तत्तव को चार रूपों में विभाजित करके देखते हैं-नित्य क्रीड़ा मग्न युगल-राधा और कृष्ण, सखीसहचरी तथा लीलाधाम वृन्दावन। ब्रजलीला को लेकर चलने वाले आचार्य वंशीअलिजी को इनमें से श्रीराधा के स्वरूप को अन्यतम बनाये रखते हुए उन्हीं के स्वरूप से प्रकट सखीसहचरी श्रीललितादिक, माता-पिता वर्ग वृषभानु-कीर्ति, नंद आदि गोप, अनन्यकेलि-सखा (अथवा सखी) श्रीकृष्ण तथा लीलाधाम ब्रज (वृन्दावन, बरसाना, रावल, संकेत आदि) को कुछ व्यापकता देकर स्वीकृत करने की आवश्यकता प्रतीत हुई।

वस्तुतः इस प्रकार की मान्यता में श्रीवंशीअलिजी की यदि कुछ मौलिकता रही है तो यही कि जैसे श्रीकृष्ण को केन्द्र मानकर चलने वाले आचार्य नंद यशोदा गोकुल आदि को प्रमुखता देकर चले हैं। वहाँ श्रीवंशीअलि ने बरसाना, रावल, वृषभानु-कीर्ति आदि को अधिक महत्त्व दिया है तथा सभी में मुख्यतः श्रीललिता, श्रीकृष्ण की अपेक्षा श्रीराधातत्त्व की अन्विति स्थापित करने तथा उनकी सर्वोत्कृष्टता सिद्ध करने के लिए अतिरिक्त प्रयत्न करना पड़ा है। एक प्रकार से उन्हें पूर्व-प्रतिष्ठित सम्पूर्ण प्रक्रिया को बिल्कुल विपरीत दृष्टि प्रदान करने के लिए कहीं-कहीं सहसा समझ में न आनेवाला उलट-फेर भी करना पड़ा है। उदाहरण के लिए श्रीललिता-राधा अद्वय की स्थापना, श्रीकृष्ण की अपेक्षा श्रीराधा के नायकत्व की सिद्धि तथा समस्त सखी-सहचरीवृन्द का श्रीकृष्ण की अपेक्षा श्रीराधाके प्रतिपति-भाव रखते हुए तमाम सौभाग्य चिन्हों को धारण करना आदि। श्रीकृष्ण को एक भक्त की श्रेणी में रखा गया है, यद्यपि उनकी भक्ति श्रीराधा के प्रति विलक्षण होने के कारण श्रीराधा उनसे अधिक उत्कृष्टता अर्थात् असाम्य रखते हुए भी उन्हें कभी-कभी अपने से श्रेष्ठतम मानकर

---

१. वहीं, श्लोक 28 ।

कृपापूर्वक भजती हैं। पहले ही कहा जा चुका है कि वे नित्य ही भक्तपराध ीना हैं। इसी क्रम में जब हम श्रीवंशीअलि विरचित 'श्रीराधिका महारास' लीला का अवलोकन करते हैं तो हमें एकाएक कृष्ण का स्थान श्रीराधा द्वारा ले लिये जाने के कारण विस्मित रहजाना पडता है। साथही श्रीकृष्ण की उपस्थिति के अभाव की संगति बिठाने में परम्परा का वैपरीत्य समझने के लिए अतिरिक्त श्रम और तटस्थ भाव से नवीन शोध-दृष्टि अपनाने के लिए बाध्य होना पड़ता है। इतना सब कुछ होते हुए भी एक सुलझे विचारक को अन्त में सभी बातों की सुनिश्चित संगति मिल ही जाती है-ऐसा हमारा मत है।

इन बातों को दृष्टिगत रखते हुए हम ललित सम्प्रदाय में स्वीकृत लीलाविधाकतत्त्वों का अन्वेषण कर सकते हैं। श्रीराधातत्त्व का परिचय तो निबन्ध के आरम्भ में ही दिया जा चुका है। अत: अब शेष अंगों पर विचार किया जाना अभिप्रेत है।

**लीलाधाम-**

भविष्य तथा आदिपुराणों को आधार बनाकर श्रीवंशीअलिजी ने श्री राधा की ब्रजलीला का वर्णन किया है। उनके कथनानुसार श्रीवृषभानु सम्पूर्ण 'भयाने' देश के राजा हैं और उनके पड़ौस में ही'महराने' नाम से विख्यात स्थान में नन्द का निवास है। रावल तथा भानुपुर (वृषभानुपुर या बरसाना) राजा वृषभानु की राजधानी है। उस सुशासित राज्य में बीस कोस के बीच में वृन्दावन का विस्तार हैं, जहाँ गायों संचरण करती रहती हैं। यह स्थान, जहाँ श्रीराधा के पग-नूपुरों की झंकार होती रहती है, करोड़ों वैकुण्ठों से भी बढ़कर है। लाख-लाख रमा-उमादिक उस भूमि में दौड़ती रहती हैं और लक्ष्मीपति-शिव-ब्रह्मादिक उन श्री राधा के कृपा-कटाक्ष की कामना करते हैं।[1]

श्रीवंशीअलिजी ने वृषभानुजी की वंशावली का विस्तार से वर्णन करते हुए कहा है कि नेह की मूर्ति श्रीवृषभानु के पिता ने जब बहुत तप किया , तब गोवर्द्धन की तलहटी में शिव के द्वारा वरदान दिये जाने पर श्रीवृषभानु का जन्म उनके घर में हुआ और उन्होंने ही 'ब्रजप्रदेश' की स्थापना की।

श्रीराधा की प्रमुख आठ सखियों में श्रीललिता का स्थान मुख्य है।

---

१. प्रियाजु की बघाई- लेखक वंशीअलिजी।

ललित संप्रदाय में गुरु के स्थान पर श्रीललिता ही प्रतिष्ठित हैं। तत्त्वत: ये श्रीराधा का ही दूसरा रूप हैं। प्रकट लीला में इनका जन्म श्रीराधा से पहले होता है, किन्तु अप्रकट लीला में श्रीराधा ने श्रीकृष्ण और ललिता को अपनी सेवा के लिए रस-विस्तार के लिये संकल्पमात्र से प्रकट किया है।

ब्रज में श्रीराधा और ललिता दोनों एक पालने में झूली हैं। बरसाने की गलियों में दोनों एक साथ ही खेली हैं। दोनों की तात्त्विक एकता बताते हुए आचार्य का कथन है-

**दोऊ परस्पर साधन दोऊ फल रूप हैं।**
**दोऊ जंत्र दोऊ जंत्री निधि मूप हैं॥** [१]

श्रीवंशीअलि कहते हैं कि इन दोनों का सख्य रस युगलरस से भी ऊपर है। जिस रस में ये दोनों सखियाँ (श्रीराधा और श्रीललिता) मत्त हैं, उसमें लाल(श्रीकृष्ण) का भो प्रवेश नहीं है। श्रीकृष्ण भी वहाँ सखी होकर-अपने पुरुष रूप को छोड़कर-ही ललिता की कुछ कृपा प्राप्त कर सकते हैं।

जहाँ-जहाँ आप वृषभानुनंदिनी का नाम सुनें वहाँ-वहाँ ललिता को व्यापक मानना आवश्यक है-

**जहाँ जहाँ नाम वृषभानुकुंवरि कौ सुनौ हो,**
**तहाँ तहाँ श्रीललिता व्यापक गनौ हो॥** [२]

'लीला सहचरी' के रूप में इनके महत्त्व को प्रतिपादित करते हुए कहा गया है-

**सब तत्त्वनि कौ सार जो जुगल विहार है।**
**ताहू कौ पर सार कीरति सुकुंवार है॥**
**ता हिय कौ आनन्द परम ललिता लली।**
**ता पद भजन सजत निजु यह मति अलि भली॥** [३]

और-

**अंचल ही में दोउ जन, जाके रहत जु नित्त।**
**वे श्री सहचरि रूप हैं, एक प्रान त्रिय मित्त॥** [४]

निकुंज सहचरी के रूप में ललिता का स्थान अन्यतम है। वे ही प्रेमक्रीड़ा की प्रेरक, युगल रूप की तोषक, पोषक, भोक्ता साक्षी तथा नित्यविहार की संयोजिका सब कुछ हैं। साथ ही परम करूणामयी हैं। ब्रज में जो कार्य माता करती है, निकुंज में वे भी ललिता द्वारा ही निप्पन्न होते

---

१/२/३/४. रास की वाचिक परम्परा में विद्यमान।

हैं। वे राधा को पुत्रवत्, मित्रवत्, पत्नीवत् और अत्मवत् सेवाओं द्वारा तुष्टि देती हैं।

–ललित सम्प्रदाय में लीलाचिंतन। डॉ0 बाबूराम गोस्वामी।

## <u>हरिदासी सम्प्रदाय और रासलीला–</u>

श्री उद्धवघमडदेवाचार्य जीको रासलीला अनुकरण की प्रेरणा, रसिक शिरोमणी स्वामी श्री हरिदास जी एवं महाप्रभु श्री बल्लभाचार्य जी से प्राप्त हुई थी। इस प्रकार वर्तमान रासलीला अनुकरण एवं रंगमंच की प्रतिष्ठा–प्रेरक के रूप में, लगभग सभी संप्रदाय के अनुयायी विद्वान, स्वामी श्री हरिदास जी को ही स्वीकार करते हैं। स्वामी जी का स्थिति काल वि. सं. १५३७-१६३२ भी सर्वप्रकार से प्रमाणित हो चुका है। स्वामी हरिदास जी वृन्दावनस्थ राजपुर के सनाढ्य ब्राह्मण–पंडितप्रवर श्रीगंगाधर जी के पुत्र थे। इनकी माता का नाम था– श्रीमती चित्रादेवी। उनका जन्म भाद्रपद शुक्ला अष्टमी वि॰सं॰ १५३७ में हुआ था।[१]

स्वामी श्री हरिदास जी ने १८ सिद्धान्त के तथा ११० पद श्रृंगार के लिखे हैं। उनके श्रृंगार के पदों का संकलन केलिमाल कहा जाता है। वैसे तो स्वामी श्री हरिदास जी ने, अपनी रचनाओं में श्री राधा–कृष्ण–युगल के नित्य–विहार का ही गायन सांगोपांग रूप में किया है, तथापि रासलीला–विषयक उनका जो निरूपण उपलब्ध है, वह सर्वोत्तमोत्तम कोटि का कहा जा सकता है। ब्रज की रासलीला–प्रदर्शन के प्रेरक होने के साथ–साथ स्वामी श्रीहरिदास जी रासलीला के असाधारण गायक भी रहे हैं। संगीत सम्राट होने के नाते भी, स्वामी जी का गायन, सभी रसिक काव्यकारों एवं गायकों में, परम उत्कर्ष से युक्त माना जाता है। रासलीला प्रदर्शन के प्रारम्भ में ही, स्वामी श्रीहरिदास जी के प्रपद से माधुर्य–वर्षा होने लगती है। सभी सम्प्रदायों के रास–लीला प्रदर्शन में,इस प्रकार, स्वामी जी का प्रपद सर्वोस्कृष्ट रूप में, प्रायः प्रतिष्ठित रहा है। स्वामी श्री हरिदास जी के रासलीला–निरूपण में श्रीकृष्ण के मुरली वादन को सर्वप्रथम स्थान प्राप्त है। श्रीकृष्ण, स्वामी जी की मान्यता के अनुसार भी, मुरली बजाकर रासलीला की रचना करते हैं। इनकी रासलीला उस कुंज के मध्य आयोजित होती है, जो समस्त प्रकार के सुन्दर वृक्षों से सुशोभित मणिजढित रासमण्डल से युक्त है। ब्रज की सखी–सहचरियों सहित, श्री राधाकृष्ण

---

१. निजमत सिद्धान्त (मध्यखण्ड);महंत श्रीकिशोरदास रचित, पृ0 ५४।

युगल, इसी कुंजस्थित दिव्य रासमण्ल में सर्वप्रथम नृत्य करते हैं।'' [१]

स्वामी श्रीहरिदस जी के अनुसार रासमण्डल के मध्य श्रीराधाकृष्ण-युगल के इस दिव्य नृत्य में जहाँ एक ओर मुस्कानयुक्त श्यामसुन्दर का झूमता हुआ नृत्य रस की वर्षा कर रहा था, वहीं दूसरी ओर सखियों द्वारा धीरे-धीरे मृदंग पर पड़ने वाली थाप ताल का मेल मिलाती थी। श्री ललिता आदि भी अपने गायन एव भाव-प्रदर्शन से अनेक प्रकार के सरस भावों एवं मुद्राओं को प्रकट कर रही थीं। इन क्षणों में वातावरण तो प्रफुल्लित था ही, साथ ही यमुना भी युगल-तत्व का रासमण्डल में होता हुआ नृत्य देखकर विथकित सी हो गई थी। स्वामी जी का धारणा है कि वह परम मधुर रस सर्वप्रकार से अनिवर्चनीय है।[२] इस प्रकार यमुना तट पर स्थित कुंज के रास मण्डल में रसलीला के जिस नृत्य का निरूपण किया है, उसमे विविध प्रकार के वाद्य-वादन का कौशल, नृत्य के विविध ा हस्तकों को लाघवता, राधा का नृत्य एवं कृष्ण का सुनवगति-संचार का रस नित्य ही बरसाता रहता है।[३]

रासलीला के विविध रूपों में, श्रीराधा द्वारा श्री कृष्ण की नृत्य शिक्षा का भी एक दृश्य अत्यन्त सुन्दर बन पड़ा है।''इस नृत्य-शिक्षा में श्रीराधा, जहाँ एक ओर रासमण्डल में, प्रियतम कृष्ण को अनेक बोलों की शिक्षा देती हैं, वहीं दूसरी ओर तांडव एवं लास्य नृत्य के विविध रूपों का प्रदर्शनात्मक स्पष्टीकरण भी करती हैं''।[४] श्रीकृष्ण मधुर रसानुभूति के लिये, लीला से ही किया गया यह कौशल अभूतपूर्व एवं अनुपम है। परमप्रियतम श्रीकृष्ण भी प्रिया जी को परमानंदित करते हुए निरंतर उनके

---

१. सुनि धुनि मुरली बन बजै हरिरास रच्यौ।
कुंज-कुंज द्रुम बेलि प्रफुलित मंडल कंचन मनिनि खच्यौ।
-स्वामी हरिदास-रससागर-केलिमाल, पद ५२(संपादन, श्रीविश्वेश्वरशरण)

२. अट्भुत गति उपजति अति नृतत दोऊ मंडल कुंधर किशोरी।
सकल सुघंग अंग भरि मोरी, पिय नृतत मुकनि मुख मोरी परिरंमन रस रोरी।।
-केलिमाल (स्वा0 हरिदास) पद ३६।

३. नदित मन मृदंगी रास भूमि सुकाँति अभिनै सुनवगति त्रिभंगी।
धापि राधा नटति ललिता रसवती नागरी गाइतेग्रिनामि तान तुंगी।।
-केलिमल, पद-९४

४. कुंज बिहारी नांचत (नी कै) लाड़िली नचावत नीकै।
औधर ताल धरैं स्यामा ताता थेई ताता थेई बोलत संग पी कै।।
-केलिमाल (सं0 गो0 छबीले बल्लभ) पद -६०।

द्वारा प्रवर्तित नृत्य, गीत, ताल की भूरि-भूरि प्रशंसा करते रहते हैं।[१] रासमण्डल में श्रीराधा कृष्ण युगल की स्थिति विद्युत-मेघ से भी बढ़कर है। स्वामी हरिदास जी के अनुसार बिजली मेघ से स्वयं यही कहती है कि वास्तविक विद्युत और मेघ तो यही श्रीराधाकृष्ण हैं। जिन्होंने विद्युतमेघ से इन दोनों युगल की उपमा दी है, निश्चय ही वे सब कच्ची बुद्धि के हैं।

**हरिदासी संप्रदाय के रासलीला गायन-**

इस प्रकार अत्यन्त गोप्यतम होते हुए भी नित्य-विहार युक्त रासलीला को स्वामी हरिदास जी ने रसिक भक्तों के कल्याणार्थ वृन्दावन स्थित यमुना-तट के सुरम्य कुंजों के मध्य मणि जढित रासमण्डल के बीच वर्णन किया है। यह रासलीला भी गीत-नृत्य-वाद्य, अभिनय तथा भाव प्रवणता की दृष्टि से अत्यन्त माधुर्यपरक है। यहाँ भी नृत्य को रासलीला का एक अंग ही माना गया है। स्वामी हरिदास जी इसी रासलीला के अनुकरणात्मक रूप की प्रतिष्ठा-हेतु उद्धव धमण्डदेवाचर्य को प्रेरित किया था साथ ही हरिदासी संप्रदाय में रासलीला निरूपण की एक परम्परा की भी प्रतिष्ठा की थी। स्वामी हरिदास जी द्वारा प्रवर्तित हरिदासी संप्रदाय की इस परम्परा की भी प्रतिष्ठा की थी। स्वामी हरिदास जी द्वारा प्रवर्तित हरिदासी संप्रदाय की इस परम्परा में रसिकों में श्रेष्ठ उन अष्ट आचार्यों की गणना की जाती है, जिन्होंने ब्रजभाषा में परम मधुर रस से युक्त लीलाओं के वर्णन प्रस्तुत किये हैं।[२] ये अष्टाचार्य निम्नलिखित हैं, यथा-

१. स्वामी श्री वीठलविपुलदेव-गद्दी पर स्थिति काल सं.१५३२-१६३२वि.
२. स्वामी श्री बिहारिनिदेव-गद्दी पर स्थिति काल सं.१६३२-१६५९वि.
३. स्वामी श्री नागरीदेव-गद्दी पर स्थिति काल सं.१६५९-१६७०वि.
४. स्वामी श्री सरसदेव-गद्दी पर स्थिति काल सं.१६७०-१६८३वि.
५. स्वामी श्री नरहरिदेव-गद्दी पर स्थिति काल सं.१६८३-१७४१वि.
६. स्वामी श्री रसिकदेव-गद्दी पर स्थिति काल सं.१७४१-१७५८वि.
७. स्वामी श्री ललितकिशोरदेव-गद्दी पर स्थिति काल सं.१७५८-१८२३वि.

---

१. गुन की बात राधे तेरे आगै को जानै जो जानै सो कछु उपहारि।
नृत्य गीत ताल भेदनी के भेद (विभेद) न जानै कहूँ(काहू) जिते-किते देखे झारि।।
-स्वामी हरिदास रस सागर(सं0 विश्वेश्वरशरण) पद-२६।

२.दामिनी कहत मेघ सों हमारी उपमा देहिं ते झूठे, येई मेघ येई बीजुरी सांची।
जिन-जिन हमारी उपमा दीनी तिन-तिन की मति कांची।।
-केलिमाल (स्वा0 हरिदास) पद ९५।

८. स्वामी श्री ललितमोहिनीदेव-गद्दी पर स्थिति काल सं.१८२३-१८५८वि.

इस अष्टाचायों के अतिरिक्त भी, हरिदासी-संप्रदाय के अन्य रसिक भक्तों ने श्रीराधा कृष्ण युगल की रासलीला का अत्यन्त वर्णन किया है। अष्टाचार्यों के उपरान्त श्री भगवतरसिकदेव, श्री पीताम्बरदेव, श्रीकिशोरदास आदि भी रासलीला-निरूपण में अग्रगण्य रहे हैं।

## अन्य विविध उपासक एवं रासलीला-

ब्रजमण्डलान्तर्गत भले ही यहाँ विद्यमान विभिन्न सम्प्रदायों ने रासलीलानुकरण के संदर्भ में पर्याप्त साहित्य सृजन के साथ-साथ अनेक सैद्धान्तिक, व्यवहात्कि एवं अभिनयात्मक तथ्यों का प्रस्तुतिकरण किया हो, लेकिन रास विषयक कार्यों के संदर्भ में अनेक एसे महानुभावों के कार्यों को विस्मृत नहीं किया जा सकता जिन्होंने रासलीलानुकरण के क्षेत्र में अपनी निष्काम साधना से इसे उत्तयेतर गतिमान एवं नई उर्जा से संवरित किया। ब्रजभाषान्तर्गत रासलीला के सन्दर्भ में श्री नारायण भट्ट के साथ-साथ अन्य रास-रसिकों के नाम भी उल्लेखनीय हैं, जिनमें श्री चरणदास, श्री वंशीअलि, श्रीब्रजवासीदास, श्रीअलवेलीअलि, श्रीब्रजनिधि, श्री भारतेन्दु हरिशचन्द्र, स्वामी प्रेमानन्द एवं ललित माधुरी आदि का नाम प्रमुखता से लिया जाता है। इन महानुभावों ने ब्रज की इस सशक्त परम्परा को न केवल शीर्ष पर प्रतिष्ठित किया अपितु इस सन्दर्भ में किए गए इनके कार्यों से आमजन आज तक आनन्दित हो रहा हैं। अनावश्यक विस्तार से बचने हेतु हम यहाँ नारायणस्वामी का रासलीला दृष्टिकोण एवं रासलीलानुकरण में उनके योगदान पर संक्षिप्त जानकारी प्रस्तुत करेंगे।

नारायण स्वामी का जन्म समय सम्वत् 1588वि. माना जाता है। अनुमान किया जाता है कि सम्वत् 1700 के कुछ पहले ही आप पधार गए।[1] ''इस प्रकार आपका स्थित-काल संवत् 1588वि. से सम्वत् 1700 वि. के कुछ पूर्व का ही निर्धारित होता है। आचार्य प्रवर श्री सनातन गोस्वामी सहित श्रीनारायण भट्ट ने ब्रज के रासलीला स्थलों अथवा रासमण्डलों की खोज तो की थी, साथ ही अन्वेषित प्राचीन रासलीला-स्थलों पर नवीन एवं भव्य रासमण्डलों का भी निर्माण कराया था। अनुकरणात्मक एवं व्यावहारिक दृष्टि से रासलीला पद्धति के उत्कर्ष में श्रीनारायण भट्ट का योगदान ब्रज की अनुकरणात्मक रास-लीला के इतिहास में निश्चय ही चिरस्मरणीय रहेगा।

१.श्री सर्वेश्वर-वृन्दावनांक, (प्रघान सं0 श्री ब्रजबल्लभ शरण) पृ 261।

श्रीनारायण भट्ट दक्षिण में मदुरापटन के निवासी थे। इनके पूर्वज भृगुवंशी वात्सगोत्री एवं ऋग्वेदी ब्राह्मण पण्डित थे। ब्रजपति श्रीकृष्ण के प्रति भी इनकी आस्था प्रसिद्ध थी। इसी वंश में पण्डित प्रवर श्री भैरवनाथ जी के पुत्र थे- री रंगनाथ। श्री रंगनाथ सुप्रसिद्ध आचार्य भास्कर भट्ट के पिता थे। इन्हीं भास्करभट्ट के दो पुत्रों में श्री गोपाल भट्ट तथा श्री नारायण भट्ट भी परम वैष्णव के रूप में सुविख्यात हुए। जिन रास रसिक प्रवर श्री नारायण भट्ट की चर्चा यहाँ की जा रही है वे ये ही श्री नारायण भट्ट हैं। श्री नारायण भट्ट जी की समस्त साहित्य साधना सं. 1602 वि. से वृन्दावन में ही सम्पन्न हुई थी। उन्होंने ब्रज में ही रहकर ब्रजभक्ति विलास, ब्रजोत्सव चन्द्रिका, ब्रजोत्सवाह्लादिनी, ब्रजमोदपि, ब्रजदीपिका वृहद्ब्रज गुणोत्सव तथा ब्रजप्रकाश नामक सात ग्रंथ निर्मित किये थे।

ऐसा भी ज्ञात हुआ है कि इन्होंने अन्य अनेक ग्रंथों की रचना की थी। इन ग्रंथों में प्रेमांकुर (नाटक), भक्तिरस तरंगिणी, भागवत की रसिक आह्लादिनी टीका, भक्ति भूषण संदर्भ, साधन दीपिका तथा भक्ति विवेक आदि भी प्रसिद्ध हैं। श्रीनारायण भट्ट ने पर्याप्त समय तक ऊँचे गांव में भी निवास किया था। 'श्री मन्महाप्रभु के पार्षद श्री गदाधर पंडित गोस्वामी, उनके शिष्य श्री कृष्णदास-ब्रह्मचारी हुए। इन्हीं ब्रह्मचारी जी के शिष्य श्री नारायण भट्ट गोस्वामी थे।''[1] श्री नारायण भट्ट जी की शिष्ट परम्परा भी अत्यन्त सुप्रतिष्ठित है। संस्कृत के महान् विद्वान होने के साथ-साथ श्री नारायण भट्ट जी रस शास्त्र के भी अन्यतम पण्डित थे। श्री नाभादास जी ने अपने सुप्रसिद्ध ग्रंथ-भक्त माता में इनके परिचय से संबंधित एक सुन्दर छप्पय दिया है।[2] श्रीध्रुवदास जी ने भी श्री नारायण भट्ट के महान् प्रयासों का उल्लेख भक्त नामावली में किया है।[3]

---

१. श्री नारायण भट्ट कृत-ब्रज भक्ति विलास की भूमिका (कृष्णदास) पृ. 4।

2. गौप्य स्थल मथुरा मण्डल जिते बाराहै बसानै।
ते किये नारायण प्रगट, प्रसिद्ध पृथ्वी में जानै।।
-भक्तमाल (श्री नाभादास ) छप्पय सं. 87।

3. भट्ट नरायन अति सरस, ब्रज मण्डल सों हेत।
ठोर-ठोर रचना करौ, प्रगट कियो सकेत।।
-भक्तनामावली (श्रीध्रुवदास) दोहा 32 ।